अप्रैल-जून अंक : 95 2018
April-June
ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

मुख्य संपादक
सन्तोष खन्ना

संपादक
डॉ. उषा देव

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

व्यक्तियों के लिए		संस्थाओं के लिए
मूल्य : 100/- रुपए	डाक ख़र्च अलग	वार्षिक मूल्य 500/-रुपए
वार्षिक मूल्य 450/- रुपए	**वर्ष 24**	आजीवन संस्था सदस्य 20,000/-रुपए
आजीवन सदस्य 5000/- रुपए	**अंक 95**	Citation No. MVB-24/2018

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
फ़ोन : 011-27491549, 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

'महिला विधि भारती'
विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in
अंक : अंक 95 (अप्रैल-जून, 2018)
मुख्य संपादक : सन्तोष खन्ना
संपादक : डॉ. उषा देव

परिषद की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू नूर (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रवेश सक्सेना (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)
10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम् (सदस्य)
15. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
16. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

बोर्ड ऑफ रेफरीज

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रदेश प्रभारी

1. प्रो. देवदत्त शर्मा (उत्तर प्रदेश) 09236003140
2. प्रो. (डॉ.) सुरेंद्र यादव (राजस्थान) 09414442947

परामर्श मंडल

1. न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर
2. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह
3. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह
4. श्री हरनाम दास टक्कर

अंक 95 में

1.	**संपादकीय**	--	107
2.	नारीवाद : एक वैचारिक दृष्टिकोण / **डॉ. उर्मिल वत्स**	--	111
3.	वस्तु एवं सेवा कर : एक परिचय ई.वे. बिल के लिए विशेष संदर्भ में / **डॉ. ममता चतुर्वेदी**	--	117
4.	राष्ट्रवाद बनाम उग्र राष्ट्रवाद / **डॉ. भगवानदास**	--	125
5.	अभिभावकों और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 : एक अनिवार्य आवश्यकता / **साधना शर्मा**	--	129
6.	ज़िंदगी का मकसद (कविता) / **डॉ. सूफिया अहमद**	--	131
7.	लिव-इन-रिलेशन का औचित्य / **डॉ. कविता विकास**	--	132
8.	सामाजिक परिवर्तन के नए आयाम : विधिक सहायता, लोकहितवाद एवं स्थायी लोक अदालत / **डॉ. प्रियंका सिंह**	--	135
9.	गाँधी दर्शन में रामराज्य की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन / **डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन**	--	139
10.	भ्रष्टाचार एवं शिक्षा की गुणवत्ता / **डॉ. अनुपमा यादव**	--	143
11.	ईमान, अंतर्यात्रा (कविता) / **डॉ. दीप्ति गुप्ता**	--	146
12.	भारत में दल-बदल की स्थिति / **डॉ. किरण त्रिपाठी**	--	148
13.	दांपत्य अधिकारों के प्रतिस्थापन की प्रासंगिकता / **डॉ. विदुषी शर्मा**	--	152
14.	मुस्लिम क़ानून और महिलाएँ / **कुमारी शालिनी कौशिक**	--	159
15.	क्या कहूँ आज (कहानी) / **डॉ. उषा देव**	--	168
16.	पुस्तक लोकार्पण, विचार एवं काव्य संगोष्ठी 2018 : एक रिपोर्ट / **रेनू नूर**	--	178
17.	तीन तलाक़ तथा बहु-विवाह और निकाह हलाला / **संतोष बंसल**	--	180
18.	फरक (लघुकथा) / **शोभना श्याम**	--	185
19.	The Constitution and the Children / **Devnarayan Meena**	--	186
20.	Lifting the Apartheid : An Insight to Rights of Forest Dwellers / **Ms. Chetali Solanki**	--	192

लेखक मंडल

डॉ. उर्मिल वत्स : सहायक प्रोफेसर, एस.पी.एम. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. ममता चतुर्वेदी : पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर व डीन आफ लॉ फैकल्टी, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)

डॉ. भगवानदास : प्राचार्य शासकीय स्नातक महाविद्यालय जबेरा जिला दमोह (म.प्र.)

साधना शर्मा : विधि व्याख्याता

डॉ. सूफिया अहमद : सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज़, बाबा साहब भीमराव अंबेडकर सेंट्रल यूनिवर्सिटी, लखनऊ-226025

डॉ. कविता विकास : स्वतंत्र लेखिका व शिक्षाविद, ब्लॉग लिंक -- काव्य वाटिका http://kavitavikas.blogspot.in/, **E-mail :** kavitavikas28@gmail.com

संपर्क : डी-15, सेक्टर-9, पी.ओ. कोयलानगर, कपेज-धनबाद, पिन-826005, झारखंड

डॉ. प्रियंका सिंह : व्याख्याता, गवर्नमेंट लॉ कॉलेज, इंदौर

डॉ. श्रीमती राजेश जैन : प्रोफेसर एवं ओ.एस.डी. उच्च शिक्षा, सागर संभाग, सागर (म.प्र.)

डॉ. अनुपमा यादव : सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शास. महाविद्यालय, भेल, भोपाल (म.प्र.)

डॉ. दीप्ति गुप्ता : 2- A, Akashdoot, 12-A, North Avenue, Kalyani Nagar, Pune-411006

डॉ. किरण त्रिपाठी : पूर्व तदर्थ प्राध्यापक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, कॉलेज, पंजाबी बाग, दिल्ली

मोबाइल : 9650075695

डॉ विदुषी शर्मा : रानीबाग, दिल्ली

Shobhna Mittal 'Shyam' : Founder and General Secretory, Udeesha-social, cultural and literary Organization, Gurugram

कुमारी शालिनी कौशिक : एडवोकेट, काँधला, शामली

डॉ. उषा देव : सेवानिवृत्त, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रेनू नूर : के-292, शकूरपुर, आनंदवास, दिल्ली-110034

संतोष बंसल : ए 1/7, मियाँवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110085

Devnarayan Meena : Advocate 60, Vidhya Nagar, Sector-4, Hiran Magri, Udaipur-313001 (Rajasthan)

Ms. Chetali Solanki : LL.B. LL.M. NET is presently Guest Faculty at MLSU Udaipur,

संपादकीय

15 जून, 2005 को भारत की संसद ने सूचना का अधिकार क़ानून बनाकर एक नया इतिहास रचा था। उस क़ानून को अक्तूबर, 2005 में ही लागू कर दिया गया था। अब सूचना का अधिकार क़ानून देश में पिछले 13 वर्षों से लागू है और 2020 आते-आते उसे डेढ़ दशक हो जाएगा। सूचना का अधिकार क़ानून देश में लोकतंत्र को सुदृढ़ करने और शासन-प्रशासन में पारदर्शिता लाने तथा उसमें जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा उसमें शासन को उत्तरदायी बनाने के लिए बनाया गया था। इन तेरह वर्षों में यह क़ानून कितना प्रभावी रहा है, अब इसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

इस क़ानून को मुख्य रूप से दो धरातलों पर क्रियान्वित किया जाना था। इस क़ानून की धारा 3 अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रथमतः इसके अंतर्गत शासन को स्वयं सुनियोजित ढंग से सूचनाएँ प्रदान करनी होती हैं। सरकार के विभागों को अपनी वेबसाइटों पर समय-समय पर अपने कार्यों की सूचनाएँ प्रदान करना होता है और साथ ही सूचनाओं का प्रचार-प्रसार भी करना होता है। दूसरा, नागरिकों को विहित तरीक़े से सरकार से सूचना माँगना और लोक प्राधिकारियों द्वारा उन सूचनाओं को प्रदान किया जाना होता है। यदि लोक प्राधिकारी सूचनाएँ प्रदान नहीं करते तो केंद्रीय सूचना आयोग अथवा राज्य सूचना आयोगों से अपील कर सूचनाएँ माँगी जा सकती हैं। यदि वहाँ भी लोक प्राधिकारी सूचना नहीं देते या ग़लत सूचना देते हैं उनके विरुद्ध जुर्माना लगाया जा सकता है जो उन्हें अपने वेतन से अदा करना होता है।

यह क़ानून अपने उद्देश्य में कितना प्रभावी रहा है इसका आकलन एक इस तथ्य से ही किया जा सकता है कि इसके लागू होने के पहले ही दशक में सूचना के अधिकार के कारण बड़े-बड़े घोटालों को उजागर किया जा सका है। प्रसिद्ध वकील प्रशांत भूषण ने सूचना के अधिकार के माध्यम से 2जी और कोयला घोटाले को उजागर किया था। इसी प्रकार, वर्ष 2008 के महाराष्ट्र में आदर्श सोसायटी घोटाले का सच भी सूचना के अधिकार के माध्यम से माँगी गई जानकारी के आधार पर सामने आया था। इसी सूचना से पता चला था कि 21-मंजिली इमारत में जो फ्लैट युद्ध विधवाओं को आंवटित किए जाने थे वही राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों ने अपने नाम आवंटित कर लिए थे। इस घोटाले

के उजागर होने पर महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री अशोक चव्हाण को अपनी सरकार से त्यागपत्र देना पड़ा था।

एक और मामला लेते हैं। असम में 2007 में कृषक मुक्ति संग्राम समिति ने एक अपील फाइल कर पूछा था कि ग़रीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों के लिए आवंटित खाद्यान्न का क्या हुआ तो पता चला कि उसके वितरण में धाँधली की गई है। बाद में जाँच में अनेक सरकारी अधिकारियों को गिरफ्तार किया गया था। इसी प्रकार 2008 में सूचना के अधिकार आवेदन के माध्यम से यह बात उजागर हुई कि पंजाब में कारगिल युद्ध और प्राकृतिक आपदाओं के पीड़ितों के लिए दी गई राहत धनराशि का दुरुपयोग किया गया। वहाँ रेडक्रास सोसाइटी से संबद्ध सरकारी अधिकारियों ने उस धन का उपयोग कारें, एयर कंडिशंड खरीदने और होटलों के बिल भुगतान में कर लिया था। ऐसे मामलों की एक लंबी सूची है जिसमें सरकारी खजाने के इस्तेमाल में अनियमितताएँ पाई जाती रही हैं।

सूचना के अधिकार के प्रभाव का आकलन इस बात से भी किया जा सकता है कि इसके लागू होने से लेकर अब तक 67 सूचना के अधिकार ऐक्टीविस्टों की हत्या की जा चुकी है और अनेक ऐसे मामले हैं जहाँ सूचना के अधिकार ऐक्टीविस्टों या उनके परिवार के सदस्यों पर हमले हुए या उन्हें डराया धमकाया गया है। इससे पता चलता है कि इस क़ानून को लागू करवाने में नागरिकों के लिए कितने खतरे हैं। जिनके विरुद्ध शिकायतें होती हैं वह कितने डरे हुए हैं कि उन्हें अपना अस्तित्त्व ही खतरे में नज़र आता है और अपने कुकर्मों को छिपाने के लिए वह हत्या की हद तक जा सकते हैं जो कि बहुत ही ग़लत है। किंतु इससे यह तो निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह क़ानून शासन-प्रशासन में पारदर्शिता लाकर भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा सकता है जिससे निश्चय ही लोकतंत्र सुदृढ़ होता है।

यहाँ एक सामाजिक कार्यकर्ता के बारे में जान लेना चाहिए। सतीश शेट्टी (जुलाई 1970-13 जनवरी, 2010) ने महाराष्ट्र में भूमि घोटालों का पर्दाफाश किया था। उन्होंने पाँच वर्षों के दौरान सरकारी कार्यालयों में की जा रही अनियमितताओं का पर्दाफाश किया था। उन्हें 13 जनवरी, 2010 को तेलेगाँव में मौत के घाट उतार दिया गया।

सतीश शेट्टी ने वर्ष 2009 में आई.आर.बी. इन्फ्रास्ट्रेक्चर और उसकी सहायक कंपनी आर्यन के विरुद्ध सूचना के अधिकार के अंतर्गत शिकायत दर्ज करवाई थी कि उन्होंने पुणे-मुंबई हाइवे पर ताजे और पिम्प्लोली गाँव में जाली दस्तावेज़ों के आधार पर लंबी-चौड़ी भूमि का अधिग्रहण कर लिया था। इस मामले में जाँच के बाद, कंपनी के 90 बिक्री करार रद्द कर दिए गए और सब-रजिस्ट्रार अश्विनी क्षीरसागर को निलंबित कर दिया गया था। इसके फलस्वरूप आई.आर.बी. कंपनी की शहर बसाने की परियोजना रद्द हो गई। इसके पश्चात् शेट्टी को धमकियाँ मिलनी आरंभ हो गई। उसने पुलिस से सुरक्षा की माँग

की किंतु उसे सुरक्षा प्रदान नहीं की गई। तत्पश्चात्, उसे मौत के घाट उतार दिया गया। सतीश शेट्टी जैसे अनेक उदाहरण हैं जिनका उल्लेख किया जा सकता है किंतु यहाँ स्थानाभाव के कारण उसका उल्लेख फिर कभी किया जाएगा। इससे यह भी पता चलता है कि किसी भी भ्रष्टाचार से पर्दा हटाना सामाजिक कार्यकर्ताओं को कितना महँगा पड़ सकता है पर फिर भी सत्य के अन्वेशी समाज सेवी अपने रास्ते से विरत नहीं होते। इन्हें भी सच्चे सेनानी की संज्ञा दी जा सकती है।

इस क़ानून के कार्यान्वयन में एक और चुनौती भी है। जब भी कोई सूचना माँगता है जिसे देने में सरकारी अधिकारियों की पोल खुल सकती है या उन्हें असुविधा हो सकती है सरकार में कार्यरत सूचना प्राधिकारी सूचना के अधिकार के अधिनियम, 2005 की धारा 8 की शरण या सहारा लेते नज़र आते हैं जबकि धारा 8 स्वयं में स्पष्ट है कि कौन-सी सूचनाएँ नागरिक माँग नहीं सकते या कौन-सी सूचनाएँ देने से सरकार इनकार कर सकती है।

जिस सूचना के प्रकट करने से भारत की प्रभुता और अखंडता अथवा राज्य की सुरक्षा, रणनीति, वैज्ञानिक अथवा आर्थिक हित एवं विदेश से संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो या किसी अपराध को करने का उद्दीपन होता हो, तो ऐसी सूचना देने से शासन इनकार कर सकता है। किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा बाधित सूचना या वह सूचना जिससे किसी न्यायालय की अवमानना होती हो तो वह सूचना नहीं दी जा सकती। संसद या विधान मंडल के विशेषाधिकार भंग करने वाली सूचनाएँ भी नहीं दी जाती। इस धारा के अंतर्गत अन्य कई प्रावधान हैं जिसके अंतर्गत लोकहित हो तो सूचना दी जा सकती है अन्यथा नहीं।

एक मामले में प्रथम अपील में लोक प्राधिकारी ने अपने फैसले में कहा कि बैंक में जमा भविष्य निधि के बारे में सूचना इस अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत नहीं दी जा सकती। इस फैसले के विरुद्ध अपील में केंद्रीय सूचना आयुक्त श्री शैलेश गाँधी ने अपने एक महत्त्वपूर्ण फैसले में कहा कि लोक प्राधिकारी धारा 8 में दिए गए विषयों पर सूचना देने से इनकार कर सकते हैं, किंतु वह मनमाने ढंग से किसी विषय पर धारा 8 का हवाला देकर सूचना देने से इनकार नहीं कर सकते।

पिछले 13 वर्षों में सूचना के अधिकार पर आए अनेक न्याय निर्णयों से यह क़ानून काफ़ी स्पष्ट हो गया है।

ऐसा नहीं है कि इस लाभकारी क़ानून का ग़लत इस्तेमाल नहीं होता। देश में कुछ सामाजिक कार्यकर्ता ऐसे भी हैं जिन्होंने खुल कर इस अधिकार क़ानून का ग़लत इस्तेमाल किया है। सूचना के अधिकार क़ानून में व्यवस्था है कि सूचना माँगने वाले से यह नहीं पूछा जा सकता कि उसे सूचना क्यों चाहिए? कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने कई-कई नामों से जाली हस्ताक्षर कर सूचनाएँ माँगी या इतनी लंबी-चौड़ी सूचनाएँ माँगी कि सरकार के लिए वह सूचना देना केवल सरकार का बहुमूल्य समय और साधनों की बर्बादी के

सिवाय कुछ नहीं था। ऐसे ही तत्त्वों को ध्यान में रख कर एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा --

''सूचना के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत सभी प्रकार की सूचना देने के बारे में, (जिनका संबंध लोक-प्राधिकारियों के कार्य में पारदर्शिता लाने या उन्हें उत्तरदायी ठहराने या भ्रष्टाचार समाप्त करने का नहीं हो) अव्यवहारिक दिशा-निर्देश देने की माँगों से लाभ के स्थान पर अधिक हानि ही होगी। क्योंकि इससे प्रशासनिक अधिकारियों की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और कार्यपालिका व्यर्थ ही सूचना एकत्रित करने में फँस कर रह जाएगी। इस अधिनियम के ग़लत इस्तेमाल की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इससे यह राष्ट्रीय विकास या अखंडता के मार्ग में बाधा बन जाएगा अथवा इससे नागरिकों में शांति और सद्भावना को ख़तरा उत्पन्न हो सकता है। यह क़ानून ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य निभाने वाले अधिकारियों के शोषण का एक साधन बन जाएगा। देश के लोग ऐसी स्थिति नहीं पैदा करना चाहते जिसमें 75 प्रतिशत लोक-प्राधिकारी अपना नियमित कार्य करने के स्थान पर अपना 75 प्रतिशत समय आवेदकों को सूचनाएँ ही देते रहें।''

उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय गिरीश देशपांडे मामले में वर्ष 2012 में दिया गया था। इस मामले में एक लोक-प्राधिकारी के बारे में सभी प्रकार के जारी किए गए ज्ञापन, कारण बताओ नोटिस, दंड संबंधी आदेश, आस्तियाँ, आयकर रिटर्न, प्राप्त उपहारों की सूची की प्रतियाँ माँगी गई थी। उच्चतम न्यायालय ने इस निर्णय में कहा कि यह विषय सूचना के अधिकार अधिनियम की धारा 8(1) के अंतर्गत आता है, इसलिए यह सूचना नहीं दी जा सकती।

वैसे उच्चतम न्यायालय के गिरीश देशपांडे के इस निर्णय की सामाजिक कार्यकर्ताओं ने आलोचना की है। विशेष रूप से सूचना के अधिकार से संबंधित कार्यकर्ता और पूर्व केंद्रीय सूचना आयुक्त श्री शैलेश गाँधी ने अपने एक आलेख में कहा है कि ''उच्चतम न्यायालय को क़ानून की व्याख्या करने का अधिकार है किंतु यह व्याख्या विवेक-सम्मत ढंग से की जानी चाहिए। मेरी राय में उच्चतम न्यायालय की यह व्याख्या क़ानून की संगत धारा के समूचे शब्दों को ध्यान में रख कर नहीं की गई। इस क़ानून में अकारण संशोधन कर दिया गया है। इस पर पुनः विचार किया जाना चाहिए। क्योंकि इस मामले को उदाहरण मान कर लोक प्राधिकारी कई मामलों में सूचनाएँ नहीं दे रहे हैं।''

वैसे, यदि हम केंद्रीय सूचना आयोग के ताजे आँकड़े देखें तो पता चलता है कि केंद्रीय सूचना आयोग में हर वर्ष लगभग 30 हज़ार मामले दर्ज होते हैं और उनके पास लगभग 30 हज़ार मामले लंबित पड़े हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि नागरिक इस क़ानून का काफ़ी सीमा तक उपयोग कर रहे हैं।

❑

डॉ. उर्मिल वत्स

नारीवाद : एक वैचारिक दृष्टिकोण

नारीवाद राजनैतिक आंदोलन का एक सामाजिक सिद्धांत है जो स्त्रियों के अनुभवों से जनित है। हालाँकि मूलरूप से यह सामाजिक संबंधों से अनुप्रेरित है लेकिन कई स्त्रीवादी विद्वान् लैंगिक असमानता और औरतों के अधिकार इत्यादि पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं।

नारीवादी सिद्धांतों का उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना और इसके फलस्वरूप पैदा होने वाले लैंगिक भेदभाव की राजनीति और शक्ति संतुलन के सिद्धांतों पर इसके असर की व्याख्या करना है। स्त्री विमर्श संबंधी राजनैतिक प्रचारों का ज़ोर प्रजनन संबंधी अधिकार, घरेलू हिंसा, मातृत्व अवकाश, समान वेतन संबंधी अधिकार, यौन उत्पीड़न, भेदभाव एवं यौन हिंसा पर रहता है।

नारीवाद के विभिन्न पहलू

विश्व में महिलाओं द्वारा आंदोलन अनेक लड़ियों से पिरोया हुआ है व इसकी बनावट अनेक तानोंबानों से जुड़ी हुई है। महिला आंदोलनों के निर्माण और विकास में अनेक महिलाओं का खून, पसीना, आँसू, अंतर्दृष्टि, विचार तथा शक्ति लगी है। नारीवाद के विकास को तीन लहरों में बाँटा जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पश्चिम में नारीवाद की लहर-1792-1963

नारीवाद की पहली लहर 19वीं सदी के आसपास ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में शुरू हुई और 20वीं सदी तक चली। पहली लहर, विशेष रूप से ब्रिटेन, कनाडा, नीदरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका और दुनिया भर में 19वीं और 20वीं सदी के दौरान उभरी। पहली नारीवादी लहर में मैरी बोलस्टोनक्राफ्ट, सुसान बी. एंथोनी, ओलंपिया ब्राउन, लूसी स्टोन और हेलन पिट्स जैसी महिला कार्यकर्ताओं के नाम उल्लेखनीय है। पहली लहर मुख्य

रूप से महिलाओं के मताधिकार पाने और विधि सम्मत आधिकारिक तौर पर असमानताओं पर मुख्य रूप से केंद्रित थी। पहली बार 'लहर' शब्द का प्रयोग 1870 में किया गया था।

मैरी वोल्स्टोनक्राफ्ट को ब्रिटिश नारीवाद की 'Grand Mother' कहा जाता है। इन्होंने पहली बार महिला आंदोलनों को पुस्तक का स्वरूप देने की कोशिश की। इसी के परिणामस्वरूप 1792 में इनकी पुस्तक 'ए विंडिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ वूमेन' प्रकाशित हुई। नारीवाद की पहली लहर ने महिलाओं के लिए एक नई राजनीतिक पहचान बनाई और महिलाओं के क़ानूनी अधिकारों, वोट के लिए संघर्ष, परिवार के भत्ते, गर्भपात और कल्याण के अधिकार, महिलाओं के श्रम, महिला सुरक्षा क़ानून और महिलाओं की क़ानूनी स्थिति की भी चर्चा की है। इस लहर का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक असमानताओं से लड़ने पर ध्यान केंद्रित करना था।

नारीवाद की दूसरी लहर महिलाओं के पुनर्जीवन और सक्रियता का उदाहरण पेश करती है। इसमें शुलामिथ फायरस्टोन, एंड्रीया डोरकिन, जरमने ग्रियर और मेरी डाले का नाम उल्लेखनीय है। इस लहर में पुरुषों द्वारा महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा, यौन उत्पीड़न का विरोध, महिलाओं की दबी, डरी, सहमी अस्मिता को बदलना, महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को बढ़ाना इत्यादि पर ध्यान केंद्रित रहा।

तीसरी लहर नारीवाद वैश्विक परिप्रेक्ष्य से संबंधित है। यह लहर सभी वर्ग, रंग, और जाति की महिलाओं का स्थानीय और विश्व स्तर पर प्रतिनिधित्व करती है। तीसरी लहर नारीवाद का आधार और नींव दूसरी लहर नारीवाद आंदोलन द्वारा रखी गई थी। भारत में महिला आंदोलन के इतिहास पर अगर हम नज़र डालें तो भारत में नारीवादी विचारधारा नारीवाद की विभिन्न तरंगों / लहरों और महिलाओं के कई सदियों के इतिहास को चित्रित करती हैं। यह भारत में महिलाओं के साथ हो रही हिंसा, अन्याय, आंदोलन, अनुभव कार्यशैली, समस्या के निवारण खोजने और बेहतर जीवन स्तर उपलब्ध कराने हेतु एक प्रयास है।

भारत में महिलाओं की स्थिति का इतिहास : हिंदू धर्म में श्रद्धा के रूप में जानी जाने वाली सभी चीजों को स्त्री कहकर संबोधित किया गया है। स्त्री को शक्ति का रूप भी माना गया है। महिलाओं का भारतीय संस्कृति में अद्वितीय स्थान है और उन्हें शक्ति के प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया गया है। गौतम बुद्ध ने समाज में महिलाओं को सर्वोपरि स्थान दिया है। उसी प्रकार महात्मा गांधी ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका को रेखांकित किया। वैदिक काल में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा प्राप्त था, लेकिन मध्यकालीन युग में महिलाओं की स्थिति

में गिरावट आने लगी जिसमें महिलाओं को कई बड़े बदलावों का सामना करना पड़ा। भारत में सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, पर्दा प्रथा, राजस्थान के राजपूतों में महिलाओं की जौहर प्रथा, हिंदू, क्षत्रिय शासकों की बहु-विवाह प्रथा, देवदासी प्रथा इत्यादि प्रचलित रहीं। 19वीं सदी के आरंभ से ही महिलाओं की समस्याओं ने समाज सुधारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। महिलाएँ प्राचीनकाल से ही अपनी अद्‌भुत शक्ति, प्रतिभा, चातुर्य, स्नेहशीलता, धैर्य, समझ और सौंदर्य के कारण पुरुष से आगे रही है। लेकिन मध्यकालीन पतन की गाथा के बाद महिलाओं को विभिन्न प्रकार के संघर्षो से जूझना पड़ा। भारत में भी हम नारीवादी को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. 1850-1915
2. 1915-1947
3. 1947-आज तक

नारीवादी विचारधारा विश्व में महिलाओं को समाज में उनका स्थान, गरिमा, आत्म-विश्वास और सभ्य मानवीय व्यवहार के लिए प्रयासरत है। विभिन्न देशों में विभिन्न परिस्थितियों में हमें अनेक प्रकार के नारीवादी आंदोलन एवं संघर्ष गाथाएँ देखने को मिलती हैं, जो किसी ख़ास परिवर्तन, परिदृश्य और परिवेश की ओर संकेत करती हैं। भारत में नारीवादी लहर पुरुष सुधारवादी विचारकों द्वारा महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन संबंधी चेतना से आरंभ होती है। ये लहर समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, पौराणिक परंपराओं, सती प्रथा, बालविवाह, देवदासी प्रथा जैसी कुरीतियों को समाप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हुई। इस लहर में पढ़े लिखे मेधावी नेताओं, विचारकों और समाज सेवियों ने निरंतर महिलाओं की सामाजिक स्थिति को बदलने का प्रयास किया। उन्होंने विभिन्न प्रकार के क़ानून पारित किए, क़ानूनों में संशोधन किया और जागृति का प्रसार किया। पुरुषों ने सुधारवादी आंदोलन चलाए और बुद्धिजीवी पुरुषों के समूहों ने भी अपने स्तर पर विभिन्न महिला सुधार कार्य आरंभ किए। इसमें विभिन्न संगठन जैसे आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन इत्यादि भी जुड़ने लगे। समाज के हर वर्ग से जुड़ने की कोशिशों में पत्र, पत्रिकाओं, निबंधों का लिखना आरंभ किया गया। विभिन्न कुरीतियों और पाखंडों का घोर विरोध किया गया। निचले तबके की महिलाओं को महिला समूहों से जोड़ने का कार्य भी किया गया। वैदिक समाज से लेकर 18वीं सदी के अंत तक महिलाओं की स्थिति में काफ़ी परिवर्तन हुआ। महिलाओं को एक अलग अस्तित्त्व के रूप में देखा जाने लगा। समाज सुधारकों के अथक प्रयत्नों से महिलाओं की संघर्ष यात्रा को गति मिली। भारत में पहली लहर की शुरुआत पुरुष समाज सुधारकों से हुई जिनमें महत्त्वपूर्ण नाम हैं -- राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, सैयद

अहमद ख़ान इत्यादि।

19वीं सदी के आरंभ में, भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत निम्न थी। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी कई कुरीतियाँ समाज को खोखला करती जा रही थी। परंपराओं और धर्म के नाम पर महिलाओं का निरंतन शोषण किया जा रहा था। इस अन्याय और क्रूरता के विरुद्ध, राजा राममोहन ने सबसे पहले आवाज़ उठाई। उन्होंने सती प्रथा और बहु-विवाह प्रथा जैसी बुराईयों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई। ब्रह्म समाज की स्थापना के बाद कई संस्थाएँ भारत में महिलाओं की उन्नति के लिए स्थापित होती चली गई। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने भी विधवाओं का जीवन सुधारने का बीड़ा उठाया।

महर्षि दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना कर वैदिक आदर्शों की ओर हिंदू समाज को ले जाने का कार्य किया। इस संस्था द्वारा उन्होंने भारत में महिलाओं के लिए शिक्षा का प्रचार किया, पर्दा-प्रथा और बाल-विवाह पर प्रतिबंध लगाया।

स्वामी विवेकानंद ने 1897 में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। स्वामी जी ने विशेष रूप से भारत में महिलाओं की स्थिति में आई गिरावट के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की।

1915-1947 की लहर के द्वारा भारतीय महिलाएँ जागृति और राष्ट्रवाद जैसी स्वतंत्रता आंदोलन की विशेषताओं को समझ पाईं। विभिन्न राष्ट्रवादी और समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन किए गए। अनेक महिला संगठनों की स्थापना की गई। राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कृपलानी, सरला देवी चौधरानी, मधुलक्ष्मी रेड्डी, सुशीला नायर, अरुणा आसफ अली, विजय लक्ष्मी पंडित, महिला उपन्यासकार कादंबरी गांगुली, सरोजिनी नायडू इत्यादि महिलाओं ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान भारत के स्वतंत्रता संग्राम में देकर राजनीतिक क्षेत्र में इतिहास रचा।

नारीवाद की दूसरी लहर में भारत की प्रबुद्ध, बुद्धिजीवी, मेधावी महिलाओं ने बड़े-बड़े समाज सुधारकों और महापुरुषों के सान्निध्य में रहकर देश की प्रगति, विकास और सुधार कार्यों में अपना सहयोग दिया। भारतीय महिलाओं के लिए एक नए युग की शुरुआत हुई। यह लहर महिलाओं की स्थिति के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के रूप में देखी जा सकती है। इनमें से कुछ प्रसिद्ध महिला समाज सुधारकों के नाम हैं --

सावित्री ज्योतिबा फूले, ताराबाई शिंदे, पंडिता रमाबाई, स्वर्णकुमारी, सिस्टर निवेदिता, सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट, कमला नेहरू, डॉ. मधु लक्ष्मी रेड्डी, दीदी बुब्बुलक्ष्मी, अरुणा आसफ अली, कमला देवी, विजय लक्ष्मी पंडित इत्यादि मुख्य है। भारतीय नारीवाद के तीसरे चरण की शुरुआत तब हुई जब एक भारतीय राष्ट्र-राज्य के रूप में संवैधानिक प्रावधानों के जरिए समता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। यदि कम्युनिस्ट धड़े को छोड़ दिया

जाए तो पचास और साठ का दशक भारतीय नारीवाद के लिए मौन के दशक रहे हैं। कम्युनिस्ट पार्टी के माओवाद से प्रभावित तेलंगाना आंदोलन में हड़तालों तथा रैलियों में हज़ारों की संख्या में स्त्रियाँ शामिल हुईं। आंदोलन में नेताओं ने पत्नियों की पिटाई एवं हिंसा जैसी स्त्री समस्याओं पर भी ध्यान केंद्रित किया जो कि उस समय के हिसाब से बड़ी बात थी।

व्यवस्थित तौर पर सत्तर के दशक में भारतीय नारीवाद के तीसरे चरण की शुरुआत मानी जा सकती है। कुछ नारीवादी इसे संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किए जाने का परिणाम मानते हैं। तीसरे चरण में भारतीय नारीवाद को हम दो स्तर पर एक साथ सक्रिय पाते हैं, पहला अकादमिक स्तर और दूसरा आंदोलन के स्तर पर। यह चरण दहेज विरोधी आंदोलन, बलात्कार और समान नागरिक संहिता जैसे मुद्दों पर केंद्रित रहा। इसके साथ ही घरेलू उत्पीड़न, गर्भपात का अधिकार, महिलाओं की उच्च पदों पर नियुक्ति, यौन उत्पीड़न, क़ानून, प्रजनन अधिकार, आय के स्तर में समानता, कार्य स्थल में, महिलाओं के अधिकार, मातृत्व अवकाश के मुद्दे भी तीसरी लहर से ही उठाए गए। यह लहर एक नए उत्तर औपनिवेशिकवाद और बाद की समाजवादी विश्व व्यवस्था में नए उदारवादी, वैश्विक राजनीति के संदर्भ में उभर कर सामने आई जोकि महिलाओं से संबंधित संपत्ति के स्वामित्व, विकास और क्रांति के सैद्धांतिक सवालों के मध्य सार्वभौमिक नारीत्व को चुनौती देते हुए महिलाओं में विविधता, बहुलता और महिला अधिकारों का समर्थन करती हैं। यह वर्तमान सिद्धांतों से परे विरोधाभासी अनुभवों के आधार पर नए सिद्धांत-निर्माण का प्रयास करती है। यह लहर निश्चिंतता के बदले अनिश्चिंतता, अस्पष्टता और विरोधाभासों को गले लगाती है ताकि अन्वेषण की नई रणनीतियों की खोज की जा सके। वे एक अलग राजनीति की ओर संकेत करती हैं, जो महिलाओं के समूहों में लिंग, कामुकता, जाति, वर्ग, चिंताओं की जटिल समस्याओं और चुनौतियों के प्रस्ताव को परिलक्षित करती है। इसको स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सक्रियता के संदर्भ में भी समझा जा सकता है जिसमें यह नारीवादी लहर महिलाओं की तस्करी, शोषण, शरीर की सर्जरी, पोर्नग्राफी इत्यादि मुद्दों पर भी चिंतनीय है। पोस्ट सोसलिस्ट विद्वान् नैसी फ्रेजर के अनुसार, ''तीसरी लहर नारीवाद चुनौतियों का भंडार है। उनका मानना है कि सार्वभौमिकता को फिर से बनाना चाहिए और नए लोकतंत्र की शुरुआत की जानी चाहिए।'' Nira Yuval Davis की पुस्तक Gender and Nation के अनुसार महिलाओं की समस्याओं का समाधान विश्वभर की महिलाओं के बीच बातचीत की संभावनाओं पर आधारित है, जो किसी भी प्रकार के राष्ट्रीय, जातीय और धार्मिक सीमाओं के बंधन को नहीं मानती।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि समाज में पितृसत्ता शोषण के एक साधन के

रूप में रही है। जहाँ एक और सदियों से समाज में पितृसत्ता ही मुख्यधारा रही, वहीं दूसरी तरफ़ अब संविधान की स्वतंत्रता एवं समानता पूर्ण मान्यताओं, विभिन्न नारीवादी सिद्धांतों, लहरों, विश्लेषणों, परिवर्तनों एवं सांस्कृतिक बदलावों के कारण महिलाएँ एक शक्ति स्तंभ की तरह उभरी है। उन्होंने अपनी निजी दुनिया को सार्वजनिक दुनिया में बदल लिया है। बदलते समय के साथ सैक्स जेंडर विभेदों में नारीवाद की नई सोच, वैचारिक मतभेद, द्वंद्वात्मकता और सैक्स से जुड़ी मान्यताओं का जेंडर की व्याख्या एवं दृष्टिकोण में परिवर्तित होना देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, ट्रांसजेंडर समुदाय में समलैंगिक, उभयलिंगी, किन्नर समुदाय के उभरते अस्तित्त्व के प्रश्नों पर, विचार-विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है लिंग संवेदीकरण (Gender senstization) और सरकार की नीतियों, व्यवहारों में बदलते परिप्रेक्ष्यों के साथ समाज की मुख्यधारा में सभी वर्गों और समुदायों के हितों की रक्षा की सकारात्मक कोशिश जारी रखना।

❑

Refrences

- Millettkate, Sexual Politics, University of Chicago Press, 1969 (2000).
- Schneir, MIram, Feminism : The Essential Historical Writings, Vintage Books.
- Simone de Beauvoir, 2009, Second Sex, Alfred A. Knopf Publication.
- Menon nivedita, Gender and Politics in India, Oxford University Press, New Delhi, 1999.
- Gerda Lener, The Creation of the Patriarchy, Oxford University Press, Oxford.
- Walby, Sylvia, Theorizing Patriarchy, Cambridge, Polity Press, 1997.
- Mahajan, Sneh, Issues in Twentieth – Century, World History, Macmillan Publication.
- Sengupta, Nandita, Marriage Murder Judgement, it was all wrong. The Times of India (The Times Group Retrieved April, 8, 2010.
- Saby M. Geroge and Ranbir S. Female Foeticide in Rural Haryana, Dahiya, Economic and Political weekly, Vol. 33 no. 32.
- Mary Wollstonecraft, A Vindication of the Rights of Women with Strictures on Political and Moral Subjects. 1792.

डॉ. ममता चतुर्वेदी

वस्तु एवं सेवा कर : एक परिचय ई-वे बिल के लिए विशेष संदर्भ में

भारत वर्ष की कर-व्यवस्था में दो प्रकार के कर वसूले जाते हैं:--

1. प्रत्यक्ष कर : जैसे आय कर आदि -- जो व्यक्ति की आमदनी पर लगते हैं।

2. अप्रत्यक्ष कर : यह व्यवसाय पर लगने वाला कर है, जैसे केंद्रीय उत्पाद कर, सेवा कर, वैट, मनोरंजन कर, विलासिता कर, लॉटरी टैक्स, कमर्शियल टैक्स, वेल्यू एडेड टैक्स, फूड टैक्स, केंद्रीय बिक्री कर, एंट्री टेक्स, पर्चेस टैक्स, एडवरटाइजमैंट टैक्स, सरचार्ज आदि।

वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.) जो भारत में 1 जुलाई, 2017 से लागू हो गया है, अप्रत्यक्ष कर ढाँचे में सुधार का एक बड़ा क़दम है। जी.एस.टी. एक एकीकृत अप्रत्यक्ष कर है जिसमें भारत में प्रचलित लगभग सभी अप्रत्यक्ष कर समाहित हो गए हैं। इससे पूरे भारत में एक ही प्रकार का अप्रत्यक्ष कर लगेगा।

जी.एस.टी. लागू होने से पूर्व भारत का अप्रत्यक्ष कर ढाँचा बहुत ही जटिल था। भारत में वस्तुओं के उत्पादन व सेवाओं पर कर लगाने का अधिकार केंद्र सरकार को था तथा वस्तुओं की बिक्री पर कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को था। इस कारण देश में और राज्यों में अलग-अलग प्रकार के और अलग स्लेब के कर लागू थे जिससें देश की कर व्यवस्था बहुत ही जटिल थी। कंपनियाँ और छोटे व्यवसायियों के लिए विभिन्न प्रकार के कर क़ानूनों का पालन करना मुश्किल होता था, और लोग हर तरह के टैक्स का भुगतान नहीं कर पाते थे।

जी.एस.टी. लागू होने से पूर्व कर व्यवस्था के अनुसार किसी सामान पर निर्माता कंपनी के उत्पादन के समय केंद्रीय उत्पाद कर लगता था और फिर जब वह सामान बिकता था तो वहाँ भी बिक्री कर लगता था जिस कारण टैक्स पर टैक्स लगने के कारण सामान का लागत मूल्य बढ़ जाता था।

जी.एस.टी. व्यवस्था के तहत निर्माता कंपनी से माल के उत्पादन के समय पूर्व में लगने वाला केंद्रीय उत्पाद कर नहीं लगता है तथा निर्माता कंपनी द्वारा माल की उत्पादन प्रक्रिया में अदा किए गए सेवा करों (जो कि इनपुट क्रेडिट कहलाता है) को माल की बिक्री के समय लगने वाले जी.एस.टी. में एडजस्ट कर दिया जाता है जिससे माल की लागत कम हो जाती है।

जी.एस.टी. व्यवस्था में केंद्र और राज्य दोनों के टैक्स सिर्फ़ बिक्री के समय वसूले जाते हैं और ये दोनों ही टैक्स माल के उत्पादन लागत के आधार पर तय होते हैं। इससे माल और सेवाओं के दाम कम रहते हैं और आम उपभोक्ता को फ़ायदा होता है।

जी.एस.टी. लागू करने के पीछे सरकार का मुख्य उद्देश्य दोहरे करारोपण की समाप्ति करना है। स्थानीय रूप से निर्मित वस्तुओं और सेवाओं की लागत कम हो जाने से भारतीय वस्तुओं और सेवाओं की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होगी जिससे भारतीय निर्यात को बढ़ावा मिलेगा। जी.एस.टी. से कर राजस्व की वसूली लागत में कमी आएगी, करोबार का ज़्यादा हिस्सा टैक्स की निगरानी में आ जाने से सरकार को ज़्यादा मात्रा में टैक्स मिलेगा जिससे देश की वार्षिक आय बढ़ेगी और देश का आर्थिक विकास होगा।

भारत की शासन व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर लागू जी.एस.टी. के दो अवयव बनाए गए हैं -- (1) सेंट्रल जी.एस.टी. और (2) स्टेट जी.एस.टी.

सेंट्रल जी.एस.टी. की वसूली केंद्र सरकार के लिए और स्टेट जी.एस.टी. की वसूली संबंधित राज्य सरकार के लिए होती है। इसी प्रकार जी.एस.टी. का नियंत्रण केंद्र और राज्य दोनों मिलकर करते हैं। सी.जी.एस.टी. की राशि केंद्र और एस.जी.एस.टी. की राशि राज्य सरकार को प्राप्त होती है। केंद्र और राज्यों के मध्य बेहतर तालमेल उत्पन्न करने के लिए जी.एस.टी. परिषद् का गठन किया गया है जिसका अध्यक्ष केंद्रीय वित्त मंत्री होता है और सभी राज्य सरकारें इसकी सदस्य होती हैं। किस वस्तु को टैक्स के किस स्लैब में रखा जाए उस पर फैसला जी.एस.टी. परिषद् करती है। वर्तमान में परिषद् द्वारा वस्तुओं और सेवाओं पर लगने वाले टैक्स के 5 प्रकार के स्लैब बनाए गए हैं -- (1) 0% (2) 5% (3) 12% (4) 18% (5) 28%। वस्तु चयन के हिसाब से मानवीय खपत के लिए नशीली शराब को छोड़कर सभी वस्तुओं और सेवाओं पर जी.एस.टी. लगाया गया है। पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पादों को भी अभी जी.एस.टी. के दायरे में नहीं लिया गया है। इन उत्पादों पर बाद की तिथि से जिसे परिषद् निश्चित करेगी, जी.एस.टी. लगाया जाएगा।

वस्तु एवं सेवाओं के उत्पादन पर केंद्र का सी.जी.एस.टी. लगता है, और जिन राज्यों में इन वस्तुओं और सेवाओं का लाभ उठाया जाता है वहाँ पर राज्य का एस.जी.एस.टी. लगता है। वस्तुओं और सेवाओं के राज्य से राज्य के बीच आवागमन पर केंद्र द्वारा आई.

जी.एस.टी. वसूला जाता है। आई.जी.एस.टी. की राशि सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस. टी. की राशि के जोड़ के लगभग बराबर होती है। राज्य की सीमा के अंदर बनने वाले माल या सेवा की बिक्री पर एस.जी.एस.टी. लगेगा। यह टैक्स वह उपभोक्ता देगा जो उपरोक्त प्रकार की वस्तु या सेवा का उपयोग करेगा।

जी.एस.टी. व्यवस्था को देश में आसानी से अनुपालन में सुविधा के लिए और देश में इसको सुचारू रूप से लागू करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों ने मिलकर जी. एस.टी. नेटवर्क जिसे जी.एस.टी.एन कहते हैं, बनाया है। इस नेटवर्क सिस्टम द्वारा जी. एस.टी. का नियंत्रण और नियमन प्रभावी तरीक़े से होगा। यह नेटवर्क एक लाभ रहित गैर-सरकारी कंपनी के रूप में पंजीकृत है। इस नेटवर्क द्वारा सभी करदाताओं को पंजीकरण रिर्टन भरना, रिफंड का दावा करना, रिटर्न प्रोसेसिंग आडिट, अससमेंट, अपील, आदि सारी सुविधाएँ आनलाइन दी जाएँगी। अतः सभी करदाता बहुत आसानी से टैक्स जमा कर पाएँगे।

जी.एस.टी. के तहत सभी व्यवसायी, उत्पादक या सेवा प्रदाता को पंजीकृत होना होगा। प्रत्येक पंजीकृत कारोबारी को एक विशिष्ट पहचान संख्या जी.एस.टी.आईएन (GSTIN) दिया जाएगा जो PAN आधारित होगा। यह विशिष्ट पहचान संख्या जी.एस.टी.आई.एन. सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के लिए समान होगी। जो कारोबारी पूर्व कर व्यवस्था में वैट, केंद्रीय उत्पाद कर या सेवा कर देने के लिए पंजीकृत थे उन्हें जी.एस.टी. के अंतर्गत पंजीकरण के लिए नया आवेदन नहीं करना पड़ेगा। केवल नए कारोबारी को पंजीकरण के लिए सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के लिए एकीकृत प्रारूप पर आवेदन ऑनलाइन भरना होगा। पंजीकरण के लिए अधिकतम तीन दिनों में स्वीकृति मिल जाती है। केवल जोखिम वाले मामलों में पंजीकरण के बाद जाँच की जाती है।

जी.एस.टी. के अंतर्गत सभी करदाताओं को कारोबार से संबंधित मासिक, त्रैमासिक और वार्षिक विवरणियाँ जी.एस.टी. पोर्टल पर ऑनलाइन जमा करनी होती हैं। छोटे करदाता, जिनके व्यवसाय की कुल वार्षिक बिक्री 1.5 करोड़ से कम है, टैक्स जमा करने के लिए जी.एस.टी. की कंपोजीशन योजना का विकल्प चुन सकते हैं। कंपोजीशन योजना के तहत कारोबारी को टैक्स जमा करने में कुछ राहत दी गई है। कंपोजीशन योजना वाले कारोबारी को अपने कुल वास्तविक बिक्री का एक समान रूप से 0.5% सी.जी.एस.टी. और 0. 5% एस.जी.एस.टी. देना होगा। ऐसे कारोबारी को एक वर्ष में तिमाही और एक वार्षिक रिटर्न भरना होगा। इस प्रकार कंपोजीशन वाले कारोबारी को जी.एस.टी. के अंतर्गत कई रिटर्न भरने यथा सप्लाई, खरीद, मासिक रिटर्न व वार्षिक रिटर्न दाख़िल करना, रिफंड का दावा करने, रिकॉर्ड बुक बनाने, बीजक जारी करने आदि से छुटकारा मिल जाता है। कम टैक्स जमा करने के कारण पैसे की भी बचत हो जाती है। इस योजना का लाभ माल

के उत्पादक, आपूर्तिकर्ता और कुछ सीमा तक सेवा प्रदाता ही उठा सकते हैं।

कंपोजीशन योजना के तहत एक PAN के अंतर्गत पंजीकृत करदाता के सभी प्रकार के व्यवसायों की वार्षिक बिक्री को जोड़कर उस करदाता की वार्षिक बिक्री की गणना की जाती है। कंपोजीशन योजना के विकल्प चुनने के लिए करदाता को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरंभ में सरकार को जी.एस.टी. पोर्टल के माध्यम से कंपोजीशन योजना चुनने की सूचना देनी होती है। कंपोजीशन योजना चुनने वाले कारोबारी अपने उपभोक्ता से जी.एस.टी. नहीं वसूल सकते। उन्हें माल बिक्री पर जी.एस.टी. स्वयं वहन करना होगा। इसलिए ऐसे कारोबारी को माल की बिक्री पर टैक्स बीजक न जारी करके उसके स्थान पर आपूर्ति बिल जारी करना होगा।

निम्नलिखित करदाता कंपोजीशन योजना के अंतर्गत आवेदन नहीं कर सकते हैं -- (1) ऐसे कारोबारी जो जी.एस.टी. से प्राप्त छूट वाली वस्तुओं का कारोबार करते हैं। (2) रेस्टोरेंट से संबंधित सेवाओं को छोड़कर अन्य सेवाओं के प्रदाता (3) आइसक्रीम, पान मसाला व तंबाकू के निर्माता (4) कभी-कभी टैक्स देने वाले कारोबारी या विदेश में रहने वाले व्यक्ति (5) ई-कॉमर्स के माध्यम से माल की बिक्री करने वाले कारोबारी।

कंपोजीशन योजना का विकल्प चुनने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरा होना आवश्यक है। (1) ऐसे कारोबारी द्वारा कोई इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा नहीं किया जा सकता है। (2) कारोबारी द्वारा जी.एस.टी. से प्राप्त छूट वाली वस्तुओं का व्यापार नहीं किया जा सकता है। (3) कारोबारी को अपने कारोबार स्थल पर साइन बोर्ड पर 'कंपोजीशन कर योग्य व्यक्ति' प्रमुखता से प्रदर्शित करना होगा। (4) अपने द्वारा जारी प्रत्येक आपूर्ति बिल पर 'कंपोजीशन कर योग्य व्यक्ति' लिखना होगा।

जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक कारोबारी को अपने द्वारा बिक्री किए हुए माल पर टैक्स देना होता है और साथ ही वह अपने द्वारा बिक्री किए हुए माल पर पूर्व में चुकता किए गए टैक्स को स्वयं द्वारा दिए जाने वाले टैक्स में एडजस्ट करने का अधिकारी होता है। इस प्रकार माल के खरीददारों अथवा बेचने वालों पर किसी तरह के अतिरिक्त टैक्स का बोझ नहीं आता है और कोराबारी को केवल अपने स्तर पर किए गए माल की मूल्य वृद्धि (value added) पर टैक्स देना होता हैं और अंत में उपभोक्ता जो उस माल या सेवा का उपयोग करता है, टैक्स वहन करता है। इसको जी.एस.टी. लगने की पूर्व टैक्स व्यवस्था और जी.एस.टी. लगने के बाद की टैक्स व्यवस्था के एक सरल उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

विवरण	GST के पूर्व की व्यवस्था	GST बाद की व्यवस्था	टिप्पणी
(A) निर्माता द्वारा थोक व्यापारी को माल का प्रेषण			
(1) उत्पादित माल की लागत	5,000/–	5,000/–	
(2) +लाभ का मार्जिन			केंद्रीय उत्पाद कर भुगतान
(3) माल निर्माण लागत	2,000/–	2,000/–	निर्माता द्वारा किया जाता था।
(4) +केंद्रीय उत्पाद कर @12%-	7,000/–	7,000/–	-- वैट का भुगतान निर्माता
(5) कुल निर्माण लागत	+ 840	–	द्वारा किया जाता था।
(6) + वैट @ 12.5 (बिक्री के समय)	7,840	7000/-	जीएसटी का भुगतान निर्माता
(7) ++ CGST@12.5% "	+ 980	+ 840	द्वारा किया जाता है।
(8) + SGST@12% "	–	+ 840	-- वह मूल्य जिस पर थोक
(9) इनवाइस (invoice) मूल्य	8,820/-	8,680	व्यापारी को माल दिया गया।
(B) थोक व्यापारी द्वारा फुटकर विक्रेता को माल बिक्री			
(1) थोक व्यापारी के लिए माल का निर्माण लागत	7,840/-	7,000/-	
(2) +लाभ का मार्जिन @10%	+ 884	+ 700/-	--वैट का भुगतान थोक व्यापारी
(3) थोक व्यापारी के माल का लागत मूल्य	8,624/-	7,700/-	द्वारा किया जाता था।
(4)+वैट @12%- (बिक्री के समय)	1,078/-	–	--जी.एस.टी. का भुगतान थोक
(5)+ CGST@12% "	–	924/-	व्यापारी द्वारा किया जाता है।
(6) +SGST@12% "	–	924/-	-- वह मूल्य जिस पर फुटकर
(7) बीजक (invoice) मूल्य	9,702/-	9,578/-	विक्रेता का माल दिया गया।
(C) फुटकर विक्रेता द्वारा उपभोक्ता को माल बेचना			
(1) फुटकर व्यापारी के लिए माल की निर्माण लागत	8,624/-	7,700/-	
(2) + लाभ का मार्जिन @10%	862.40/-	770/-	वैट का भुगतान फुटकर विक्रेता
(3) फुटकर विक्रेता के लिए माल का लागत मूल्य	9,486.40/-	8,470/-	द्वारा किया जाता था।
(4) + वैट @12%- (बिक्री के समय)	1,185.40/-	1,016.40/-	GST का भुगतान फुटकर
(5) ++ CGST@12% "	–	1,016.40/-	विक्रेता द्वारा किया जाता है।
(6) + SGST@12% "			वह मूल्य जिस पर उपभोक्ता
(7) उपभोक्ता के लिए माल का कुल मूल्य	10,672.20/-	10,502.80/-	माल खरीदता है।
(D) उपभोक्ता को जी.एस.टी. के पूर्व व्यवस्था की तुलना में GST के बाद की व्यवस्था के माल के मूल्य में बचत			10672 /20 --10502 80=169/40 i.e. 1.59%

उपरोक्त उदाहरण में निर्माता अपने द्वारा निर्मित माल पर बिक्री के समय जो वैट या जी.एस.टी. देता है उसका भुगतान वह सरकार को रिटर्न भर कर देता है। उसके बाद इसी माल के लागत मूल्य, जो थोक व्यापारी के लिए होता है, पर थोक व्यापारी को वैट या जी.एस.टी. का भुगतान करना होता है लेकिन यह थोक व्यापारी इसी माल पर निर्माता द्वारा दिए जा चुके वैट या जी.एस.टी. की राशि का सरकार से रिफंड प्राप्त करने का अधिकारी होता है। इसी प्रकार उपरोक्त उदाहरण में फुटकर विक्रेता को भी माल के लागत

मूल्य, जो फुटकर विक्रेता के लिए होता है, पर वैट या जी.एस.टी. का भुगतान करना होता है। लेकिन उसे भी थोक व्यापारी द्वारा इसी माल पर दिए जा चुके वैट या जी.एस. टी. की राशि का सरकार से रिफंड प्राप्त करने का अधिकार होता है। इस प्रकार उपरोक्त उदारहण में थोक व्यापारी को जी.एस.टी. के पूर्व की व्यवस्था में और जी.एस.टी. के बाद की व्यवस्था में क्रमशः रुपए 980/ और (रुपए 840/ + रुपए 840) रुपए 1680 का रिफंड (जिसे इनपुट क्रेडिट कहते हैं) प्राप्त होगा और फुटकर विक्रेता को क्रमशः रुपए 1078/ और (रुपए 924/+ रुपए 924) रुपए 1848/ का रिफंड प्राप्त होगा। इस प्रकार जी.एस.टी. के बाद की व्यवस्था में थोक व्यापारी और फुटकर विक्रेता को वास्तविक रूप में अपने द्वारा की गई माल की मूल वृद्धि क्रमशः रुपए 700/ तथा रुपए 770/- पर ही जी.एस.टी. देना पड़ेगा। इससे जी.एस.टी. के पूर्व की व्यवस्था तुलना में जी.एस.टी. के बाद की व्यवस्था में माल की क़ीमत कम हो जाती है। इसीलिए उपरोक्त उदाहरण में उपभोक्ता को माल की क़ीमत में रुपए 169/40 की बचत प्राप्त हो जाती है।

ई.वे. बिल : ई.वे. बिल जी.एस.टी. व्यवस्था का ही एक भाग है और जी.एस.टी. पोर्टल से लिंक है। पुरानी टैक्स व्यवस्थाओं में माल को राज्य के भीतर या एक राज्य से दूसरे राज्य में परिवहन द्वारा भेजने पर आपूर्तिकर्ता को कागज पर बिल बनाना पड़ता था। पहले जो बिल कागज पर बनता था जी.एस.टी. के अंर्तगत अब वह कंप्यूटर पर बनेगा और उसके बाद इसे जी.एस.टी. नेटवर्क पर अपलोड कर दिया जाएगा। पुरानी व्यवस्था में जो काग़ज़ पर बिल बनाया जाता रहा है उसे हम रोड परमिट के नाम से जानते रहे हैं। अब जी.एस.टी. लागू होने के बाद यही पुराना रोड परमिट कंप्यूटर द्वारा जी.एस.टी. नेटवर्क पर अपलोड करने के बाद ई.वे. बिल कहलाता है।

ई.वे. बिल व्यवस्था प्रारंभ में 16 जनवरी, 2018 से राज्य के भीतर माल परिवहन के लिए लागू की गई है। बाद में इसे चरणबद्ध तरीके से पूरे देश में लागू किया जाना है। 1 जून, 2018 तक इसे राज्यों से बाहर के माल परिवहन पर भी लागू कर दिया जाएगा।

अगर जिस माल का परिवहन एक राज्य से दूसरे राज्य या फिर एक ही राज्य के भीतर हो रहा है और उसकी कीमत रुपए 50,000/-- से ज़्यादा है तो माल भेजने वाले को ई.वे. बिल बनाना अनिवार्य होगा। ये ई.वे. बिल आवश्यकता पड़ने पर माल मँगाने वाला या माल परिवहनकर्ता भी बनवा सकता है। वैसे तो रुपए 50,000/-- से कम कीमत का माल होने पर ई.वे. बिल जारी होना आवश्यक नहीं है लेकिन माल भेजने वाला या उसे प्राप्त करने वाला चाहे तो ई.वे. बिल जारी कर सकता है। माल का परिवहन शुरू होने से पहले ई.वे. बिल जारी होना आवश्यक है। ई.वे. बिल जारी होने के बाद यह मान लिया जाता है कि माल भेजने वाले ने जिस माल को भेजा है उसे माल प्राप्त करने वाले

ने स्वीकार कर लिया है। अगर माल प्राप्त करने वाला माल को वापस या लेने से मना करता है तो उसे इसकी जानकारी जी.एस.टी. पोर्टल पर बिल की वैद्यता अवधि के अंदर देना अनिवार्य है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि माल भेजने वाले के लिए उन वस्तुओं के परिवहन के लिए भी ई.वे. बिल बनाना ज़रूरी होगा जो जी.एस.टी. के दायरे में नहीं आती है।

ई.वे. बिल को दरअसल जी.एस.टी. पोर्टल पर form GST ins-I के रूप में जारी किया जाता है। form GST ins-I में दो भाग होते हैं। भाग-ए और भाग-बी। भाग-ए में माल की जानकारी भरी जाती है और भाग-बी में परिवहनकर्ता (Transprter) के बारे में, माल भेजने वाले का विवरण और माल पाने वाले का विवरण दर्ज करना होता है। जी.एस.टी. नेटवर्क पर ई.वे. बिल अपलोड करते वक्त उसके लिए एक विशिष्ट ई.वे. बिल नंबर (ebn) जनरेट हो जाएगा। यह विशिष्ट ई.वे. बिल नंबर (ebn) एक रेडियो फ्रीक्वेंसी आईडेंटीफिकेशन डिवाइस के साथ जुड़ जाता है। इसके बाद इस ई.वे. बिल की जानकारी माल भेजने वाले, माल प्राप्त करने वाले और माल ढोने वाले ट्रांसपोर्टर को हो जाएगी।

ई.वे. बिल के नियमों के मुताबिक टैक्स कमिश्नर या उसकी ओर से अधिकृत अधिकारी को माल के परिवहन के समय कहीं भी और कभी भी ई.वे. बिल की जाँच करने का अधिकार होगा। वाहन चालक या माल के साथ चलने वाले व्यक्ति को अपने ई.वे. बिल की फोटो कॉपी या इलेक्ट्रॉनिक कॉपी दिखानी होगी। टैक्स विभाग के अधिकारी द्वारा ई.वे. बिल के ebn नंबर को अपने पास रखी रेडियो फ्रीक्वेंसी आईडीफीकेशन डिवाइस के पास ले जाने पर अपने आप उसकी सारी जानकारी कंप्यूटर पर दिखने लगेगी। ई. वे. बिल के माध्यम से ही जी.एस.टी. अधिकारी परिवहन किए गए माल के बारे में यह सुनिश्चित कर सकेंगे कि उस माल पर **उचित तरीके से जी.एस.टी. लगाया गया है कि नहीं**। टैक्स अधिकारी को किसी दिन के ई.वे. बिल की जाँच के बाद एक दिन के अंदर चैकिंग संबंधी जानकारी की संक्षिप्त विवरण उच्चाधिकारी को प्रस्तुत करनी होगी। इसके बाद तीन दिन के भीतर फाइनल रिपोर्ट प्रेषित करनी होगी।

ई.वे. बिल की अवधि : किसी एक राज्य के भीतर अगर दस कि.मी. के दायरे में माल भेजा जा रहा है तो उसके लिए ई.वे. बिल बनाने की ज़रूरत नहीं होगी। अगर किसी माल का परिवहन 100 कि.मी. तक होना है तो उसके लिए बना ई.वे. बिल सिर्फ़ एक दिन तक के लिए मान्य होगा। 100 कि.मी. से 300 कि.मी. तक के लिए तीन दिन, 300 कि.मी. से 500 कि.मी. तक के लिए 10 दिन और 1,000 कि.मी. या उससे अधिक के लिए ई.वे. बिल 15 दिनों तक के लिए मान्य होगा। ई.वे. बिल की वैद्यता वाली समय सीमा के अंदर माल की ढुलाई पूरी करना आवश्यक होगा। किसी कारणवश

अगर ऐसा नहीं हो पाता है तो फिर से ई.वे. बिल बनवाना होगा। बदलाव की स्थिति में एस.एम.एस. के जरिए जारी हुए ई.वे. बिल को कैंसिल करके दूसरा ई.वे. बिल भी बनवाया जा सकता है।

ई.वे. बिल के फायदे : ई.वे. बिल प्रणाली लागू होने से सरकार, टैक्स प्रशासन और कारोबारी वर्ग तीनों को सहूलियत रहेगी। कारोबार का ज़्यादा हिस्सा टैक्स के दायरे में आ जाने से सरकार को ज़्यादा मात्रा में टैक्स मिलेगा। राष्ट्रीय स्तर पर यह सिस्टम लागू होने के बाद हर राज्य में एक जैसे नियम लागू हो जाएँगे। इससे एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच माल के आवागमन में सहूलियत रहेगी। साथ ही पारदर्शिता और निष्पक्षता के साथ माल का परिवहन ज़्यादा तेज गति से होगा और कारोबारी माहौल की उन्नति में सहायक होगा।

सरकार को टैक्स सिस्टम पर नज़र रखने में आसानी रहेगी। टैक्स अधिकारी परिवहन पर जा रहे माल की कहीं भी चैकिंग कर सकेंगे। टैक्स अधिकारी के पास GST नेटवर्क से जुड़ी मशीन होगी जो उस ई.वे. बिल से जुड़ी जानकारी की जाँच कर सकेगी। माल भेजने से पहले ही ई.वे. बिल बनने से टैक्स प्रशासन को टैक्स की चोरी रोकने में मदद मिलेगी।

कारोबारियों और टैक्स प्रशासन के कर्मचारियों में मिलीभगत और मनमानी की गुंजाइश पर भी लगाम लगेगी। लाल फीताशाही भी कम होगी।

ई.वे. बिल के ऑन लाइन मौजूद होने से कारोबारियों या ट्रांसपोर्टरों को उसके खोने या नष्ट हो जाने की चिंता नहीं रहेगी। जी.एस.टी. नेटवर्क पर पूरा विवरण मौजूद होने से उसे कभी भी और कहीं भी ऑन लाइन देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. वस्तु एवं सेवा कर मार्ग दर्शिका, लेखक राकेश कुमार
2. इंटरनेट -- hind.planmoneytax.com
3. इंटरनेट -- ca.shivashish@gmail.com

डॉ. भगवानदास

राष्ट्रवाद बनाम उग्र राष्ट्रवाद

फ्रांस की राज्य क्रांति ने यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता की भावना को बलवती किया, 19वीं शताब्दी में यही राष्ट्रीयता की भावना कालांतर में उग्र राष्ट्रवाद में परिणित हो गई। कहा जाता है कि किसी भी राष्ट्र की जनता में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होना उस राष्ट्र के लिए वरदान है, किंतु यदि यही राष्ट्रीयता की भावना उग्र राष्ट्रवाद का रूप ले लेती है तो यह उस राष्ट्र के लिए अभिशाप बन जाती है। क्योंकि किसी भी वर्ग में जब उग्र राष्ट्रवाद का बोलबाला होता है तो यह दूसरे वर्ग की भावनाओं का निरादर करता है, दूसरे के हितों की अनदेखी करता है जिससे परस्पर शत्रुता का भाव पैदा होता है और शत्रुता का भाव राष्ट्र की उन्नति की राह रोकता है एवं उसे पतन की ओर ले जाता है।

हमारा भारत देश भी विविधतापूर्ण समाज का समावेश है जिसमें हिंदू, बौद्ध, जैन, सिक्ख, ईसाई, मुस्लिम, अफगानी, ईरानी, यहूदी, पारसी इत्यादि धर्मो के आर्यन, मंगोलाइड, प्रोटो आस्ट्रोलायड नस्ल व हिंदी, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मराठी, मलयाली, बंगाली, आसमिया इत्यादि भाषा-भाषी, सामान्य, पिछड़ा, दलित, आदिवासी बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक सभी सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। इन सभी की हमारी भारतीय राष्ट्रीयता के अंदर अपनी अपनी अस्मिता है अपनी-अपनी सांस्कृतिक पहचान व अपनी-अपनी जीवन शैली है, जिसके निर्वाह की स्वतंत्रता व उनके मध्य परस्पर सम्मान का भाव अपरिहार्य है, इन सभी विविधताओं को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए हमारे देश में एक संविधान, एक राष्ट्रध्वज, एक राष्ट्रगान, एकल नागरिकता है तथा कुछ अपवादों को छोड़कर एक समान अपराधिक क़ानून है ।

हमें यहाँ तस्वीर के दूसरे पहलू की ओर भी झाँकना होगा--संवैधानिक रूप से हमारा देश धर्म निरपेक्ष है, लेकिन हमारा समाज न केवल धर्म सापेक्ष है, बल्कि कहीं कहीं धार्मिक कट्टरता व धर्म-भीरूता भी है। क़ानूनतः सभी व्यक्ति सामाजिक रूप से एक समान है। क़ानूनन अस्पृश्यता दंडनीय है, परंतु ग्रामीण भारतीय समाज में इसका अस्तित्व अपने दमखम

के साथ विद्यमान है। समाज में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जो यह चाहते हैं कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक का संपूर्ण भारतीय समाज केवल उनके धर्म का आचरण करे, केवल उनकी जुबान से बोले, उनकी भाषा, उनकी संस्कृति, उनकी धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं का अनुगमन करे, यही चिंतन जब दूसरे वर्गों का भी होता है कि सारा समाज दुनिया को उनके आइने से देखें, उनके दिमाग से दुनिया के बारे में सोचें, उनकी आँखों से दुनिया को निहारे, तब यह भावना टकराव एवं शत्रुता को बढ़ावा देती है, जिससे समाज में असहिष्णुता का भाव पनपता है तथा यह असहिष्णुता का भाव न केवल परस्पर वैमनस्य को जन्म देता है, बल्कि असहिष्णुता के शिकार लोगों में आगे चलकर अलगाव को भी जन्म दे सकती है।

यहाँ मै विश्व इतिहास की कुछ घटनाओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा --

1. चौदहवीं शताब्दी में स्थापित तुर्की साम्राज्य ने लगभग एक शताब्दी में अपना इतना विस्तार कर लिया था कि इसकी सीमाएँ एशिया, यूरोप एवं अफ्रीका तक फैल गई थीं। यूरोपीय भाग में बाल्कन प्रायःद्वीप जिसमें बोस्निया, हर्जेगोविना, मान्ट्रेनिग्रो, सर्बिया, यूनान, माल्डेविया तथा वालेशिया इत्यादि भूभागों में विजय प्राप्त कर तुर्की ने इन्हें अपने अधीन कर लिया था। बाल्कन प्रायःद्वीप के निवासी स्लाव नस्ल के थे तथा ईसाई धर्म व ग्रीक चर्च के अनुयायी थे, तुर्की के सुलतान ने अपने से भिन्न धर्म के इन धार्मिक अनुयायियों की धार्मिक भावना को समझने व उसे सम्मान देने का कभी प्रयत्न नहीं किया। उसने इन क्षेत्रों व यहाँ के निवासियों के प्रति हमेशा उपेक्षा एवं शत्रुतापूर्ण व्यवहार रखा, परिणामस्वरूप इन बाल्कन राज्यों में तुर्की साम्राज्य के प्रति घोर असंतोष का भाव पनपा, इस असंतोष से तुर्की साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

   1789 की फ्रांस की राज्य क्रांति से प्रेरित होकर इन बाल्कन राज्यों ने तुर्की की दासता से मुक्ति हेतु संघर्ष प्रारंभ किया। तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष का सर्वप्रथम बिगुल 1804 ई. में सर्बिया ने तथा 1821 में यूनान ने बजाया। निरंतर संघर्ष के फलस्वरूप 1817 में सर्बिया को तथा 1829 में यूनान को स्वशासन का अधिकार मिला। 1830 आते-आते सर्बिया एवं यूनान तुर्की से पूर्णतः स्वतंत्र हो गए। 1867 में सर्बिया ने मित्र राष्ट्रों के समर्थन से तुर्की की सेनाएँ पूर्णतः सर्बिया से हटवाने में सफलता प्राप्त की। 1856 में मोल्डाविया एवं बालेशिया ने अपने एकीकरण हेतु आंदोलन चलाए जिसके परिणामस्वरूप 1862 में रूमानिया नाम का नया देश अस्तित्त्व में आ गया। सर्बिया यूनान एवं रूमानिया के सफल आंदोलनों

से प्रेरणा लेकर अन्य बाल्कन राज्यों में राष्ट्रीयता की भावनाओं का तीव्र विकास हुआ। रूस के समर्थन से सर्व स्लाव आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा तथा ये सभी बाल्कन राज्य तुर्की से अपनी मुक्ति हेतु तड़पड़ाने लगे। 1874 में बोस्निया एवं हर्जेगोविया में प्राकृतिक विपदाओं के चलते फसलें नष्ट हो जाने के कारण वहाँ के किसानों ने तुर्क अधिकारियों को कर एवं बेगार देने से इनकार कर दिया परंतु तुर्क अधिकारी कहाँ मानने वाले थे उन्होंने यहाँ के किसानों से करों की वसूली एवं बैगार लेने में कठोरता का परिचय दिया परिणाम स्वरूप बोस्निया एवं हर्जेगोविना ने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह ही कर दिया।

2. इसी प्रकार 1876 में बल्गारिया के ईसाईयों ने तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, अनेक तुर्की अधिकारियों की हत्या कर दी गई। तुर्की के सुलतान ने इन हत्याओं का बदला लेने तथा विद्रोह को कुचलने के लिए वहाँ के गाँव के गाँव नष्ट कर दिए। लगभग 12000 से अधिक ईसाईयों को मार डाला। इस पाश्विक हत्याकांड ने पूरे यूरोप को हिला डाला। बाल्कन राज्यों में इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। 1876 में ही सर्बिया एवं मांट्रेनिग्रो ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा मांट्रेनिग्रो की सेना ने दो स्थानों पर तुर्की की सेना को पराजित भी कर दिया।

   1877 में रूस का धैर्य जबाव दे गया तथा उसने सर्बिया की ओर से तुर्की के विरुद्ध युद्ध में कूदने का निश्चय किया। रूसी सेनाओं ने डेन्यूब को पार कर तुर्की साम्राज्य में प्रवेश किया तथा प्लेवेना दुर्ग पर विजय प्राप्त करते हुए जब रूसी सेनाएँ कुस्तुनतुनिया की ओर बढ़ी तब विवश होकर तुर्की सुलतान को 3 मार्च 1878 को सेन स्टीफेनों की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश होना पड़ा, जिसके द्वारा न केवल उसे बल्गारिया को स्वशासित राज्य के रूप में स्वीकार करना पड़ा, बल्कि बोस्निया, हर्जेगोविना को एक ईसाई गर्वनर जनरल के अधीनस्थ रखे जाने की शर्त स्वीकार करनी पड़ी। इस संधि के फलस्वरूप यूरोप के मानचित्र से तुर्की साम्राज्य ही लुप्त हो गया। बाद में 13 जुलाई, 1878 को संपन्न बर्लिन सम्मेलन द्वारा बोस्निया, हर्जेगोविना का प्रशासन ऑस्ट्रिया को सौंप दिया गया। 1912-13 में प्रथम बाल्कन युद्ध में मांट्रेनिग्रो ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। शीघ्र ही यूनान सर्बिया एवं बल्गारिया तुर्की के विरुद्ध इस युद्ध में शामिल हो गए, इन राष्ट्रों ने तुर्की को चारों ओर से घेर लिया। तुर्की के हाथ से शेष भाग भी निकल गए एवं तुर्की के यूरोपीय साम्राज्य का विश्व मानचित्र से अंत हो गया।

3. 1917 की क्रांति के पूर्व रूसी साम्राज्य में अनेक नस्ल एवं जातियों के लोग निवास

करते थे, इनमें यहूदी, पोल, फिन, उन्जबेग, तातार, कज्जाक, आर्मीनियन, जर्मन इत्यादि प्रमुख थे। जार अलेक्जेंडर प्रथम के समय से ही इन अल्पसंख्यकों के रूसीकरण की नीति अपनाई जा रही थी। एक जार एक धर्म का नारा लगाकर इन ग़ैर रूसी लोगों का दमन किया गया, उनकी भाषा पर प्रतिबंध लगाए गए, उनकी संस्कृति के प्रति निरादर भाव रखा गया। इस निरादर एवं दमन की नीति के चलते 1905 में जार्जिया पोलैंड एवं बाल्टिक सागर में विद्रोह हुए जिन्हें कुचलने के लिए जार द्वारा वहाँ की जनता पर अमानुषिक अत्याचार किए गए। परिणाम स्वरूप वहाँ के समाज में 1917 की रूसी क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार हुई, जिसने हमेशा-हमेशा के लिए जार के शासन का ही अंत कर दिया।

विश्व इतिहास की उपर्युक्त घटनाएँ हमें संदेश देती है कि हम एक-दूसरे की जीवन शैली, जिसमें उसका खानपान, पहनावा, बोलचाल, रहन-सहन सम्मिलित है, में केवल कमियाँ न देखें बल्कि, हम एक-दूसरे की सांस्कृतिक पहचान, उसके धार्मिक आचरण, उसकी भाषा, उसकी क्षेत्रीयता का परस्पर आदर करें। भारत का संविधान यहाँ रहने वाले हर नागरिक को यह आज़ादी देता है कि वह अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म का आचरण कर सकता है, किसी भी पूजा पद्धति को अपना सकता है, जब चाहे तब अपनी मर्ज़ी के अनुसार किसी भी धर्म का त्याग कर उसके स्थान पर किसी भी अन्य धर्म को पुनः अंगीकर कर सकता है। बगैर किसी धार्मिक आचरण के नास्तिक का जीवन भी जी सकता है। हमें व्यक्ति की इस धार्मिक आज़ादी का सम्मान करना होगा। हम समाज में व्यक्तियों को उनकी गरिमा से नहीं अपितु उनकी जातीय पहचान की दृष्टि से देखते हैं तथा इनमें कुछ व्यक्तियों की गरिमा का सम्मान करना हमें हमारी कुलीन शान एवं सामाजिक मर्यादा के विपरीत नज़र आता है और जब यही तिरस्कृत व्यक्ति किसी अन्य धर्म का आचरण करने लगते हैं, तब देश में भूचाल ला देते हैं। अपने आचरण में, अपनी जीवन शैली में हम उसे भावनात्मक रूप से अपने धर्म का अनुयायी महसूस नहीं कराते और जब तिरस्कार निंदा अपमानवश वह अन्य धर्म की शरण लेता है तो हमें अपने धर्मावलंबियों की संख्या घटती नज़र आती है।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने देश में रहने वाली सभी जातियों, वर्गों, भाषा भाषियों व धर्मावलंबियों का परस्पर सम्मान कर उन्हें एक देश, एक निशान, एक संविधान, एक नागरिकता के बैनर तले संगठित कर सच्चे राष्ट्रवादी बनें न कि अपनी धार्मिक पहचान अपनी भाषा अपनी जीवनशैली बलपूर्वक दूसरों पर लाद कर उग्र राष्ट्रवादी।

❑

साधना शर्मा

अभिभावकों और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 : एक अनिवार्य आवश्यकता

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रथा पहले से प्रचलन में रही है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं और उनके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए उचित जीवन स्तर की सुविधाएँ मिलनी चाहिए जिसमें भोजन, कपड़े, आवास और चिकित्सा की सुविधा शामिल हैं। इसमें आवश्यक सामाजिक सुरक्षा, बेरोज़गारी, बीमारी, असमर्थता, विधवापन, वृद्धावस्था अन्य सभी सुरक्षा के अधिकार शामिल है।

भारतीय समाज अब भौतिकवाद से प्रभावित हुआ है और संयुक्त परिवार प्रथा विखंडन की ओर अग्रसर है। इसके कई कारण हैं, परंतु इसके प्रभाव से वृद्धों और वरिष्ठ नागरिकों की उपेक्षा की घटनाओं में निरंतर वृद्धि हो रही है। इन घटनाओं को रोकने के लिए ''अभिभावकों और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 पारित किया गया।''

एक वरिष्ठ नागरिक जो अपने संघर्षपूर्ण जीवन के बाद सारे कर्त्तव्यों को पूर्ण कर वृद्धावस्था में आता है तो उसे एक चिंता मुक्त गरिमामय जीवन जीने का अवसर मिलना चाहिए। जिसमें उसके जीवन की सुरक्षा, उससे निष्पक्ष व्यवहार, पूरा सम्मान, स्वास्थ्य की देखभाल और उसकी अभिलाषाओं का सम्मान होना चाहिए।

इस अधिनियम का प्रयोजन उन माता-पिता के लिए वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करना है जो स्वयं का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। वृद्ध की सहभागिता पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। उनकी कुशलता एवं अनुभव को युवा पीढ़ी के साथ बाँटने का अवसर मिलना चाहिए। स्वयं सेवक के रूप में काम करने का अवसर मिलना चाहिए।

वृद्ध हेतु विशेष क्लब की स्थापना की जानी चाहिए। असमर्थ वरिष्ठ नागरिक जो अपना भरण-पोषण नहीं कर सकते उनके बच्चे व वारिस उनको एक मासिक भत्ता प्रदान करेंगे।

इस अधिनियम का उद्देश्य बच्चों व उत्तराधिकारियों के लिए एक क़ानूनी दायित्व

प्रदान करना है। संविधान का अनु. 39(क) अधिकथित करता है कि राज्य अपनी नीति का विशिष्ट तथा इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान संजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने के अधिकार दे। केंद्र व राज्य दोनों सरकारों को सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा के संबंध में प्रावधान करने के लिए तीसरी सूची की प्रविष्टि 23 के अधीन सशक्त किया गया है।

वृद्ध व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक व संवेगात्मक समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं। आधुनिक समय में समाज में वृद्ध अब भावनात्मक उपेक्षा और शारीरिक तथा वित्तीय समर्थन के अभाव में छोड़े जा रहे हैं। दुर्भाग्य का समय आ गया है। अब संतानों का उनके माता-पिता की उनकी वृद्धावस्था में देखरेख की नैतिक विधायी आबाध्यता द्वारा समर्थन किया जाना चाहिए।

सामाजिक सुरक्षा व अकेलापन दो बड़ी समस्याएँ है। व्यक्ति अपने पैतृक स्थल में रहना पसंद करता है जहाँ संसाधन की कमी है। शहर में अकेले रह रहे वरिष्ठ व्यक्ति समाज विरोधी तत्त्वों का लक्ष्य हो रहे हैं। उनके प्राण व सम्पत्ति की रक्षा व संरक्षण के लिए राज्य सरकारें उपयुक्त तंत्र को संस्थित करती हैं। वृद्ध की चिकित्सीय सुविधा इस विधायन में शामिल है।

यह विधायन नैतिक आबाध्यता निर्णीत करता है। इस अधिनियम के अधीन किए गए भरण-पोषण के आदेश का वही बल और प्रभाव होगा जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अध्याय 9 में अधीन पारित आदेश का होता है।

वर्तमान विधायन का उद्देश्य वृद्ध के भरण-पोषण के लिए समर्थकारी तंत्र को सृजित करना है। दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अधीन भरण-पोषण का दावा कर सकते हैं, पर वह प्रक्रिया समय ख़राब करने वाली और ख़र्चीली होती है। यह अधिनियम के अनुसार सामान्य व कम ख़र्चीली और त्वरित प्रावधानों के रखने की आवश्यकता को पूरा करता है।

यह बिल उन लोगों पर बाध्यता अधिरोपित करती है जो ऐसे उम्र दराज़ नातेदारों का भरण-पोषण करने के लिए उम्र दराज़ नातेदारों की संपत्ति का दाय भाग प्राप्त करते है। यह अधिनियम उत्तम चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करता है।

जीवन व संपत्ति की सुरक्षा के लिए प्रावधान करता है। प्रत्येक पंचायत स्तर, जनपद स्तर, जिला स्तर, राज्य स्तर संबंधी कार्य होना चाहिए। प्रत्येक जिले में वृद्धाश्रम गृह की स्थापना करना आवश्यक है।

भारत में साठ वर्ष से अधिक व्यक्तियों की संख्या 2013 में दस करोड़ के पास थी जो क़रीब 2030 तक 2 गुना या 19.8 करोड़ हो जाएगी। उस समय इस अधिनियम को विभिन्न विस्तार की आवश्यकता होगी। दिल्ली उच्च न्यायालय में 15/03/2017 को एक न्यायिक निर्णय पिता को पुत्रों द्वारा परेशान करने के विरुद्ध आया है जिसमें इसका विस्तार पिता ने अपने पुत्रों को अपने से दूर कर दिया, क्योंकि वे उन्हें शांतिपूर्वक नहीं रहने दे रहे थे।

सन्नी पॉल याचिकाकर्ता का पुत्र था जो शराबी था, एक धोखाधड़ी के मामले में दोषी है, उसने अपने पिता पर हमला किया व बीमार माता-पिता को परेशान करता था। इस अधिनियम के तहत उसे 10 दिन के अंदर घर खाली करने का आदेश हुआ।

भारतीय उच्च न्यायालय ने कहा कि सभी भारतीय नागरिक व भारतीय वृद्ध नागरिकों को मौलिक अधिकार है कि वे बिना डर या भय के अपना जीवनयापन कर सकें।

❑

कविता

डॉ. सूफिया अहमद

ज़िंदगी का मकसद

आज बड़ी क़शमकश में हूँ मैं
हर वो कहानी
जो सुनती आई बचपन से
कि किसी का हो जाना ही
ज़िंदगी का मक़सद है
हर वो उसूल
जो सीखती हुई बड़ी हुई
कि प्यार, कुर्बानी और
ख़ुद को मिटा देना ही
ख़ुश रहने का ज़रिया है
तहज़ीब के दायरे में रहना
और फिर ये ख़्वाब
कि किसी और का ख़्वाब बनो
ये पाबंदी कि उसके बताए
रास्तों पे चलना ही फ़र्ज़ है
उसके वजूद में समा जाना ही
मुहब्बत की मंज़िल है
लेकिन आज
कहानी का अंजाम
बदलने को दिल करता है
उसूलों की किताब
ख़ुद लिखने को दिल करता है
तहज़ीब के दायरों से
बाहर निकलने को दिल करता है
ज़िंदगी का मक़सद
तुम्हारी शर्तों पे जीना तो नहीं था
काश तुम समझ पाते
कि मेरे वजूद का होना
तुम्हारे होने का मोहताज नहीं
जानती हूँ
जानती हूँ कि तुम्हें परवाह नहीं
तो जाओ
मुझे भी परवाह नहीं
तुम कोई चाँद नहीं हो
जिसे पाने कि मुझे ख़्वाहिश हो।

❑

डॉ. कविता विकास

लिव-इन-रिलेशन का औचित्य

एक सिद्धांत पर आधारित कार्य जो किसी धर्म की बुनियाद रखते हैं और एक संस्कृति का उद्बोधन करने वाली वैवाहिक परंपराएँ जो किसी आलोचना या किसी परिवर्तन के लिए आह्वान नहीं करती हैं बल्कि अपने विस्तृत आयाम में समय के अनुसार अपेक्षित परिवर्तन के लिए एक खुला मापदंड रखते हुए सहजता से उस परिवर्तन को अपना लेती है तो वह केवल हिंदू धर्म में ही संभव है। सनातन धर्म में विवाह के लिए आवश्यक सात फेरे जब आर्य धर्म के तहत तीन-चार फेरे में बदल सकते हैं और सिंदूर-बिंदी की अनिवार्यता ख़त्म हो सकती है तो जाहिर सी बात है हिंदू धर्म किसी को किसी भी बंदिश में बाँधे रखने की वकालत नहीं करता। इतनी आज़ादी, इतना लचीलापन और इतनी पारदर्शिता किसी भी धर्म में नहीं है। यह तो व्यक्ति-विशेष या परिवार-विशेष पर निर्भर करता है कि वह सामाजिक मूल्यों और नीतियों के तहत किस प्रकार की वैवाहिक संस्था का पालन करता है। आज़ादी का मतलब यहाँ हिंसा, एक से अधिक स्त्री रखने या पर-स्त्री के साथ यौन संबंध बनाने की इजाज़त नहीं देता। ऐसा करने पर क़ानूनी कार्यवाही का प्रावधान है। आज़ादी है, पुरानी मान्यताओं को अपनी सुविधानुसार ढालने की मगर धार्मिक और आस्तिक मूल्यों का उल्लंघन किए बिना।

लिव-इन-रिलेशन पिछले कुछ दशकों से उभरा, अत्याधुनिक लाइफ-स्टाइल से जुड़ा एक विवादास्पद और आयातित मुद्दा है जो महानगरों से होते हुए नगरों और गांवों तक पहुँच गया है। हिंदू मैरेज एक्ट कहीं भी इस रिश्ते को मान्यता प्रदान नहीं करता जिसमें एक पुरुष और एक स्त्री बिना वैवाहिक बंधन में बंधे सालों एक-दूसरे के साथ रहते हों और फ्री सेक्स की वकालत करते हों। परिवार बनाने का आधार विवाह है। यह आधार इतना मज़बूत होता है कि दो अनजान परिवार और दो अनजान व्यक्ति आजीवन एक-दूसरे का साथ निभाने के लिए संकल्पबद्ध हो जाते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ कर भारत में बिन ब्याहे रहने की प्रक्रिया को कभी भी स्वस्थ मानसिकता के घेरे में नहीं रखा जाता है ।

बीसवीं सदी तक लिव-इन-रिलेशन की परंपरा बहुत कम थी। अति उच्च वर्ग और अति निम्न वर्ग को छोड़ दिया जाए तो समाज के विकास का मापदंड मध्यमवर्गीय परिवार ही है। शिक्षा का प्रचार सबसे ज़्यादा इसी वर्ग में हुआ है। लड़कियाँ पढ़ाई और नौकरी के लिए बाहर जाने लगीं। यही बात लड़कों के साथ भी हुई। स्पष्ट सी बात है, पहनावा, परिवेश और पोषण सभी में बदलाव आया। सूचना-यंत्र में क्राँति आ गई और सेवा क्षेत्र ने एक ऐसे ज्ञान को जन्म दिया जहाँ हर जीवित सभ्यता पैसे की खनक में बदल जाना चाहती है। अकेले रहने की समस्या आन खड़ी हुई। विकास ने असामाजिक तत्त्वों को भी बढ़ावा दिया। असुरक्षा की भावना से कोई परिवार अकेली लड़की या अकेले लड़के को अपने मकान में शरण देने में हिचकिचाता है। विवाहित जोड़े को किराए पर मकान देने में कम जोखिम होता है। तब अकेला लड़का और अकेली लड़की एक-दूजे को पति-पत्नी बना कर उनके सामने प्रस्तुत होने लगे। रहने का ठिकाना तलाशने की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे स्वतंत्रता और सीमित जवाबदेही के कारण इतनी लुभावनी हो गई कि विवाह का विकल्प बनने लगी। साथ रहते हुए तो जानवर भी पारिवारिक सदस्य बन जाते हैं, फिर इनसान तो सृष्टि का सबसे संवेदनशील प्राणी है। आपस में झुकाव स्वाभाविक है। समस्या तब आने लगी जब संतान की उत्पत्ति होती है। चूँकि इस रिश्ते में कोई कमिटमेंट नहीं है इसलिए संतानोत्पत्ति के बाद पुरुषों द्वारा माँ-बच्चे को नहीं अपनाना आत्महत्या, अवसाद और बिख़राव का कारण बनता है।

भारत में लिव-इन-रिलेशन के संबंधों में कोई अलग से क़ानून नहीं है, लेकिन अलग-अलग समय पर कोर्ट ने याचिकाओं पर निर्णय सुनाये हैं। 2010 के एक फैसले में लिव-इन की संतान को जायज़ माना गया। बच्चों का पिता की संपत्ति पर हक़ भी माना गया। 2015 के एक निर्णय में लिव-इन की स्त्री को संपत्ति में अधिकार का समर्थन मिला। यानि, अमेरिका और यूरोपीय देशों की तरह यहाँ भी लिव-इन-रिलेशन को वैधानिक मान्यता मिल चुकी है। अलग होने पर इन्हें तलाक़ की प्रक्रिया से गुज़रने की ज़रूरत नहीं, पर स्त्री अपने भरण-पोषण के लिए दावा कर सकती है। उसका शारीरिक और मानसिक शोषण नहीं किया जा सकता पर परिवार एवं समाज की प्रतिक्रिया झेलने के लिए उन्हें तैयार रहना ही होगा क्योंकि हमारी संस्कृति इस खुली संस्कृति के लिए इजाज़त नहीं देती। यह तो पाश्चात्य शैली के प्रभाव, बदलते मूल्यों, उच्च आकांक्षाओं और बंधन-विद्रोह के कारण उपजा एक आचार है जो परिवार जैसी मान्य और स्थापित संस्था के अस्तित्त्व को नकारता है। भारतीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में और विश्व में वैवाहिक परंपरा की साख बनाए रखने वाले भारत देश में यह एक असामाजिक परंपरा लाती है जो परिवार जैसी सामाजिक संस्था पर प्रश्न-चिन्ह लगाता है। मात्र यौन-आकांक्षाओं के लिए, समय बिताने के लिए

या अपनी जवाबदेही से पलायन करने के लिए यह रिश्ता मैत्री भाव और उन्मुक्त वातावरण का बिगड़ा रूप है। एक-दूसरे को जाँचने-परखने के लिए भी शादी के पहले बालिग़ जो हरकतें करते हैं वो सही नहीं हैं। युगल वर्ग को यह उपयोगी लग सकता है पर भविष्य में सुरक्षा के अपर्याप्त साधन देखते हुए यह कहीं से भी उचित नहीं जान पड़ता। यू. एस. में 2002 के एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण के मुताबिक 15 से 44 वर्ष की स्त्रियाँ लिव-इन-रिलेशन में थीं और क़रीब 65 प्रतिशत युगलों ने पाँच वर्ष के भीतर शादी कर ली। अब भी पश्चिमी देशों में लिव-इन-रिलेशन बहुत प्रचलित है। आज से एक शताब्दी पूर्व प्रेमचंद ने लिव-इन-रिलेशन पर एक कहानी लिखी थी। यदि साहित्य को समाज का दर्पण मानें तो हर युग में ऐसे संबंध बनते ही रहे हैं पर वैश्वीकरण के बाद जब खुली संस्कृति का पदार्पण हुआ तब से यह ज़्यादा प्रचलित हो गया।

बिना परिणय के प्रणय तभी तक मान्य है जब तक कोई एक किसी तरह का फ़ायदा नहीं उठा रहा हो। लिव-इन हमारी विवाह संस्था के अस्तित्व को एक चुनौती है। विवाह के साथ गृहस्थ आश्रम का मौलिक महत्त्व है जो वंश वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा और नैतिक मूल्यों का वहन करता है। यह मूल्य एक आदर्श नागरिक बनाकर आदर्श राष्ट्र के निर्माण में सहायक होता है।

❑

विधि भारती परिषद् 'राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार'

वर्ष 2005 से विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा हिंदी विधि लेखन को बढ़ावा देने के लिए विधि भारती परिषद् ने हिंदी विधि पुस्तकों पर 'राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार' प्रारंभ किए थे। विधि पुस्तकों पर प्रथम पुरस्कार 7100/-रुपए, द्वितीय पुरस्कार 5100/-रुपए, तृतीय पुरस्कार 3100/-रुपए है।

वर्ष 2018 का राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार पिछले तीन वर्षों अर्थात् 2015, 2016 और 2017 में प्रकाशित विधि पुस्तकों पर दिया जाएगा। विधि भारती पुस्तक पुरस्कार का निर्णय एक तीन सदस्यीय पुस्तक पुरस्कार निर्णायक मंडल द्वारा किया जाएगा जो अंतिम होगा। पुरस्कार विधि भारती परिषद् के एक भव्य समारोह में प्रदान किए जाएँगे।

पुस्तक भेजने की आखिरी तिथि 31 अगस्त, 2018

पुस्तक भेजने का पता :--

विधि भारती परिषद्

बी.एच/48, (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

दूरभाष : 011-27491549, **मोबाइल :** 9899651872, 9899651272

ई-मेल : vldhibharatiparishad@hotmail.com

डॉ. प्रियंका सिंह

सामाजिक परिवर्तन के नए आयाम : विधिक सहायता, लोकहितवाद एवं स्थायी लोक अदालत

विधिक सहायता विधिक सेवाओं का ही एक अंग है। विधिक सहायता ही है जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पोषण करती है। प्रत्येक व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। कोई भी व्यक्ति अनसुना नहीं रहे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39(ए) में सभी के लिए न्याय सुनिश्चित किया गया है और ग़रीबों तथा समाज के कमज़ोर वर्गों के लिए निःशुल्क क़ानून सहायता की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 14 और 22(1) के तहत राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि वह सबके लिए समान अवसर सुनिश्चित करे। विधिक सेवाएँ प्रदान करने के लिए एक तंत्र की स्थापना के लिए वर्ष 1987 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम पास किया गया।

न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के अनुसार, ''न्याय के एक साधन के रूप में विधिक सहायता एक सामाजिक अनिवार्यता तथा न्याय प्रशासन का अभिन्न अंग है। न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के अनुवाद ''सबके लिए समान न्याय एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है लेकिन निर्धनता न्याय के मार्ग में एक अवरोध है। विधिक सहायता निर्धन व्यक्तियों को विधि के समक्ष समान संरक्षण प्रदान करने का एक साधन है।''

निर्धन व्यक्तियों के विरुद्ध वाद संस्थित करना अथवा अभियोजन चलाना तभी न्यायपूर्ण अथवा सार्थक कहा जा सकता है जब उन्हें अपनी परिरक्षा करने का अवसर मिले। लेकिन अर्थाभाव अर्थात् निर्धनता के कारण वे अपनी परिरक्षा नहीं कर पाते हैं।

यही कारण है कि हमारी न्याय-व्यवस्था में हमने विपक्ष को प्रतिरक्षा करने का समुचित अवसर प्रदान करने का प्रयास किया। भारतीय न्याय-व्यवस्था का उद्देश्य कभी एकपक्षीय न्याय करने का नहीं रहा है। वर्तमान न्याय-व्यवस्था में इसके निम्नांकित रूप मिलते हैं --

(1) विधिक सहायता, (2) विधिक साक्षरता, (3) लोक अदालत; और (4) लोकहितवाद

(1) **विधिक सहायता** : निर्धन व्यक्तियों को न्याय सुलभ कराने के लिए हमारी न्याय-व्यवस्था की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्कीम 'विधिक सहायता' की है। यदि कोई व्यक्ति निर्धन है अर्थात् अर्थाभाव के कारण न्यायालय में दस्तक दे पाने में असमर्थ है तो ऐसे व्यक्तियों को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। इसके लिए मुख्य रूप से निम्नांकित विधियों एवं संविधान में उपयुक्त व्यवस्था की गई है।

(क) संविधान के अनुच्छेद 39-क
(ख) संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 में
(ग) दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 303 एवं धारा 304 में।
(घ) सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 2 नियम 10-क आदेश 33 एवं आदेश 44 में।

संविधान के अनुच्छेद 38-क में तो यहाँ तक कहा गया है कि 'राज्य यह सुनिश्चित करे कि कोई भी व्यक्ति मात्र अर्थाभाव अर्थात् निर्धनता के कारण न्याय से वंचित न रहे।''

एम.एच. हासकॉट बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र[1] (ए.आई.आर. 1978, एस.सी. 1548) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि ''निर्धन व्यक्तियों को विधिक सहायता उपलब्ध कराना राज्य का कर्त्तव्य है, अनुकंपा नहीं।''

सुकदास बनाम अरुणाचल प्रदेश संघ क्षेत्र[2] (ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 991) तथा **हुस्न आरा खातून बनाम गृह सचिव बिहार सरकार** (ए.आई.आर. 1979, एस. सी. 1860) के मामले में तो उच्चतम न्यायालय ने यहाँ तक कह दिया है कि ''निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करना व्यक्ति का मूल अधिकार है। ऐसे मामलों में न्यायालयों को अभियुक्त के आवेदन की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। यह न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह अभियुक्त को उसके इस अधिकार से अवगत कराए।''

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 (Legal Services Authorities Act 1987) : भारतीय संसद ने सन् 1987 में विधिक सेवा प्राधिकारियों द्वारा कमज़ोर वर्ग के लोगों को मुफ़्त क़ानूनी सहायता प्रदान किए जाने हेतु एक व्यापक क़ानून पारित किया जो 'लीगल सर्विसेज अथॉरिटीज अधिनियम 1887' कहलाता है। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं --

(1) समाज के कमज़ोर वर्गों के लिए निःशुल्क विधिक सहायता सुलभ करना।
(2) मामले के त्वरित निपटारे हेतु लोक-अदालतें आयोजित करना।
(3) ऐसी न्याय-व्यवस्था लागू करना जिसके अधीन सभी को समान न्याय के अवसर उपलब्ध हों; और

(4) संविधान के अनुच्छेद 39(क) के उपबंधों को कार्यान्वित करने हेतु ग़रीबों के लिए निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करना।

विधिक साक्षरता : 'विधि की अज्ञानता क्षम्य नहीं होती' अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को विधि की जानकारी होने की अवधारणा की जाती है और प्रत्येक व्यक्ति से भी यह अपेक्षा की जाती है कि उसे विधि की जानकारी हो। कोई भी व्यक्ति विधि की अज्ञानता का बहाना बनाकर अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से बच नहीं सकता।

हमारे यहाँ विभिन्न योजनाएँ प्रारंभ की गई हैं, जैसे --

(1) साक्षरता शिविर
(2) साहित्य प्रकाशन
(3) पेरा-लीगल क्लिनिक
(4) पेरा-लीगल सर्विसेज

कलाबेन कलाभाई देसाई बनाम अला भाई करमशी देसाई[3] मामले में यह कहा गया है कि महिलाओं और बालकों को उनके निःशुल्क विधिक सहायता के अधिकार से अवगत कराना अधिवक्ताओं एवं न्याय अधिकारियों का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य के निर्वहन के बिना विधिक सहायता एवं विधिक साक्षरता का मिशन पूरा नहीं हो सकता।

लोक अदातल : विलंब से मिला न्याय नहीं के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विलंब न्याय को विफल कर देता है। यह सही भी है। न्याय वही है जो समय पर मिले। विलंब से मिले न्याय की सार्थकता एवं प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है। लोक अदालतों की प्रमुख विशेषताएँ हैं --

(1) इनमें मामलों का निपटारा पक्षकारों में आपसी समझौतों अथवा राजीनामों के द्वारा किया जाता है।
(2) इनमें पक्षकारों के बीच कटुता को दूर कर उनमें मधुर संबंध स्थापित किए जाने का प्रयास किया जाता है।
(3) इनमें व्यय भी नाम मात्र का होता है अर्थात् इनमें मामलों के निपटारे में कोई ख़र्च नहीं होता।
(4) मामलों का निपटारा तत्परता से हो जाता है। अनावश्यक विलंब नहीं होता।
(5) राजीनामों में न्यायिक अधिकारी, शिक्षक, समाजसेवी आदि अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हैं।

अब्दुल हसन तथा राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम दिल्ली विद्युत बोर्ड[4] (ए. आई.आर. 1999, दिल्ली 88) के मामले में तो न्यायमूर्ति अनिल सिंह देव द्वारा लोक अदालतों को स्थायी एवं निरंतर स्वरूप प्रदान करने की अनुशंसा की गई है। मुकदमों की बढ़ती हुई संख्या तथा ख़र्चीली एवं विलंबकारी न्याय-व्यवस्था से राहत पाने का यही एक सुलभ उपाय सिद्ध हो सकता है।

लोकहितवाद : निर्धन व्यक्तियों को न्याय सुलभ कराने की दिशा में एक ओर क्रांतिकारी पहल 'लोकहितवाद' की है। ऐसे व्यक्तियों की ओर से किसी भी अन्य व्यक्ति अथवा संगठन द्वारा वाद संस्थित किया जा सकता है। यही लोकहितवाद की अवधारणा है। लोकहितवादों की ग्राह्यता के लिए आवश्यक मात्र यह है कि --

(1) वह जनसाधारण के व्यापक हितों से जुड़ा हो।

(2) निजी हित निहित न हो।

(3) सद्भावनापूर्वक हो।

(4) राजनीति से प्रेरित न हो।

न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर का कहना है कि 'पीड़ित एवं व्यथित व्यक्तियों के ही न्यायालयों में जाने की संकुचित धारणा अब समाप्त हो चुकी है। उसका स्थान अब वर्ग कार्यवाही, प्रतिनिधिवाद, लोकहितवाद आदि ने ले लिया है।'

लोकहितवाद आज की न्याय-व्यवस्था एवं विधिक सहायता स्कीम का एक अपरिहार्य अंग बन गया है। अब न्यायालय के दरवाज़े केवल उद्योगपतियों, ठेकेदारों, तस्करों और हाजी व्यक्तियों के लिए ही खुले नहीं होकर जनसाधारण के लिए भी खुले हुए हैं।[6]

'शीला बर्से बनाम यूनियन ऑफ इंडिया' इसमें यह कहा गया है कि लोकहितवाद में परंपरागत प्राइवेट मुकदमों से भिन्न विवादों का निपटारा करने की मैकेनिज्म है क्योंकि उसमें निजी अधिकारों का निर्धारण अथवा न्याय निर्णयन नहीं होता है।

निष्कर्षतः इससे स्पष्ट है कि विधिक सहायता, लोक अदालत एवं लोकहितवाद विषयक क़ानूनों से व्यापक सामाजिक परिवर्तन आया है। इससे समाज में एक नई न्यायिक क्रांति का सूत्रपात हुआ है। विधिक सहायता से उपचार चाहने वाले व्यक्ति को अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता है। विधिक सहायता से व्यक्ति को न्याय जल्दी एवं निःशुल्क प्राप्त करना है।

❑

संदर्भ

1. ए.आई.आर. 1978, 1548
2. ए.आई.आर. 1979, एस.सी. 1360
3. ए.आई.आर. 2000, गुज़रात 232
4. ए.आई.आर. 1999, दिल्ली 88
5. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन अंक इंडिया, ए.आई.आर. 1982, एस.सी. 1473
6. ए.आई.आर. 1980, एस.सी. 2211

डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन

गाँधी दर्शन में रामराज्य की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

महापुरुषों के वचन सदियों से चर्चा और चिंतन का विषय रहे हैं। मान्यता है कि जीवन का निचोड़ और अस्तित्त्व का सार व्यक्ति के शब्दों में निहित होता है। जीवन भर आत्मबल और आत्मशुद्धि के आधार पर किए कार्यों द्वारा गाँधी जी अपने राम के उपदेशों का अनुसरण करने में लगे रहे है। गाँधी दर्शन में राम एक सर्वव्यापी ईश्वरीय शक्ति का स्वरूप हैं। गाँधी जी के अनुसार, राम को केवल एक ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व मानकर उनके अस्तित्त्व के प्रमाणों को खोजना अपनी राह से भटकने के समान था। अपने इसी राम के साथ एकरूपता गाँधी के नैतिक जीवन का लक्ष्य था क्योंकि उनके लिए राम नैतिक मर्यादा का स्रोत भी थे और राम नाम को वह अमोघ अस्त्र मानते थे।

उनके राम पर हिंदू धर्म का एकाधिकार नहीं था। उनके राम हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी के थे। गाँधी दर्शन में गाँधी जी ने ईश्वर अल्लाह दोनों नामों को 'रघुपति राघव राजा-राम' के साथ जोड़ा और रामधुन को स्वंतत्रता संग्राम की टेक बताकर हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक बनाया। गाँधी जी ने राम-नाम को भारत की उदार और सहिष्णु परंपरा को सहेजने और देश में फैली नफ़रत एवं सांप्रदायिकता को मिटाने के लिए किया। उन्होंने राम-नाम को शारीरिक, मानसिक और नैतिक व्याधियों से बचने के लिए अचूक औषधि बताया। गाँधी दर्शन में राम राज्य स्थापित करने की बात कई बार कही गई।

गाँधी जी के राम-राज्य की परिकल्पना बिल्कुल अलग थी। राम-राज्य अर्थात् आदर्श राज्य। किसी एक धर्म विशेष का राज्य नहीं बल्कि नीति और मर्यादा पर आधारित एक ऐसा राज्य जिसमें धर्म, जाति, लिंग, भाषा और क्षेत्र आदि के आधार पर भेद-भाव न हो। प्रत्येक व्यक्ति के पास राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता और अभिव्यक्ति का अधिकार हो। प्रेम और सद्भाव जिस राज्य की नींव हो वह रामराज्य है। गाँधी जी के

जीवन पर रामकथा में उल्लेखित राम के राज्य अर्थात् शासन व्यवस्था का विशेष प्रभाव पड़ा है।[1]

रामकथा मानव जीवन को समुन्नत बनाने वाले नैतिक मूल्यों का अक्षय भंडार है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में रामकथा का विशिष्ट स्थान है। श्रीराम के बिना भारतीयता का अस्तित्त्व एवं उसकी पहचान संभव नहीं है, राम कथा हिंदू संस्कृति का पर्याय बन गई है। आधुनिक भारत में आज राम के अमूल्य विचार अत्यंत अनुकरणीय हैं क्योंकि विश्व इतिहास और विश्व साहित्य में राम के समान अन्य न तो कोई पात्र कभी हुआ है और न कभी होगा। राम को भारत का आदि निर्माता भी कहा जा सकता है। राम का जीवन कितना महान्, कितना आदर्श पूर्ण रहा है इस संबंध में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा ''राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।

''कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।'' श्रेष्ठ व्यक्ति जो आचरण करते हैं समाज में अन्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं तथा मर्यादा पूर्ण व्यक्तित्त्व ही विश्वास का पात्र बन सकता है क्योंकि वहीं लोकधर्म का परिपालन पूर्ण रूपेण कर सकता है। प्राचीन काल से रामकथा मानव जीवन में अमृत की रसधार बरसा रही है।''[2]

यह कथन सत्य है कि रामकथा की लोकप्रियता का श्रेय स्वयं राम को है। इनका संपूर्ण जीवन आदर्श मानव का रहा है। उनके आदर्श चरित का वर्णन ही वाल्मीकि रामायण का उद्देश्य है क्योंकि रामायण एक संस्कृत महाकाव्य है जिसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। हिंदू धर्म में रामकथा अर्थात् रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमें रिश्तों के कर्त्तव्यों को समझाया गया है। इसमें एक आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई, आदर्श मित्र और आदर्श राजा को दिखाया गया है। रामायण महाकाव्य में 24,000 छंद और 500 सर्ग है जो सात भागों में विभाजित है। वस्तुतः राम के जीवन का प्रत्येक पक्ष मानव के लिए अनुकरणीय है। राम विषम परिस्थितियों में सहनशीलता और धैर्य का परिचय देते हैं, उनकी प्रबंधन कला एवं कुशलता अनोखी रही है।[3]

गाँधी दर्शन और रामकथा (रामराज्य के संदर्भ में) : भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आधुनिक भारत के महान् जननायक, समाज सुधारक और नैतिक दार्शनिक होते हुए भी रामकथा से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने राम के समान धर्म और नैतिकता को अपने विचारों में सबसे प्रमुख स्थान दिया है। दूसरे शब्दों में, वे नैतिकता को राजनीतिक और अर्थशास्त्र से ऊँचा स्थान देते हैं। यही नहीं, गाँधी जी के विचार स्वतंत्रता, समानता, भयमुक्त समाज, अस्पृश्यता, ग़रीबी के अभिशाप से मुक्ति हेतु आर्थिक स्वावलंबन की शिक्षा, कर्म और व्यवहार में समानता, साध्य और साधन की पवित्रता, सत्य और अहिंसा द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति, सबका भला करना और पारदर्शिता आदि रामकथा से परे नहीं है।[4]

गाँधी जी ने राम के विचारों से प्रभावित होकर एक ख़ुशहाल समाज यानि राम-राज्य को स्थापित करने के लिए उनके द्वारा जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है तथा जिन कार्यों को संपादित किया है वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। गाँधी दर्शन भी राम के समान विचारों का पुलिंदा न होकर व्यावहारिक कार्यों का भी नाम है जो सादगी सदाचार पर आधारित लोकहितवाद है। मानवीय ख़ुशहाली के लिए एक दर्शन है। प्रेम और विश्वास समाज की रीढ़ एवं परिवर्तन का माध्यम है। इसी प्रेम और विश्वास पर गाँधी जी का रामराज्य टिका रहता है जो मार्क्सवादी तलवार से ज़्यादा शक्तिशाली व तीव्र है। उनका प्रेम व्यापक एवं प्रभावकारी है, जिससे व्यक्तिगत स्तर से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक परिवर्तन बहुत ही आसानी एवं शांतिपूर्ण तरीके से किया जा सकता है। रामराज्य मानवीय व्यक्तित्त्व, उसकी गरिमा एवं उसकी पवित्रता की पुनर्स्थापना करने पर बल देता है। केंद्रीयकरण के स्थान पर विकेंद्रीयकरण संस्थाओं का प्रतिपादन करता है, वे राज्य को शक्ति का पुँज मानकर व्यक्ति स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उसकी सत्ता को सीमित करता है। उनका आदर्श लोकतंत्र एक राज्य विहीन और वर्गहीन समाज है। राज्य एक साधन है जिसके द्वारा समाज के लोगों का सर्वांगीण विकास हो सकता है। उन्होंने एक पूर्ण अहिंसक और राज्यविहीन समाज की कल्पना को रामराज्य की संज्ञा दी है, 'सबकी समान उन्नति' सिद्धांत का अनुसरण किया था वह सिद्धांत 'सर्वे भवंतु सुखिनः' पर आधारित है। राम के समान गाँधी जी ने एक ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना की थी जो नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं आर्थिक पुनरुत्थान पर आधारित होगा, जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर जाति, धर्म या आर्थिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा।[5]

सन् 1929 में यंग इंडिया में गाँधी जी ने लिखा था कि रामराज्य से मेरा मतलब है ईश्वरीय राज अर्थात् भगवान का राज्य। रामराज्य का प्राचीन आदर्श निःसंदेह एक ऐसे सच्चे लोकतंत्र का है जहाँ सबसे कमज़ोर नागरिक भी बिना किसी लंबी और महँगी प्रक्रिया के जल्दी से जल्दी न्याय मिलने के प्रति आश्वस्त हो। मेरे सपनों का रामराज्य राजा और रंक को बराबर का अधिकार देगा। गाँधी जी ने जीवन भर स्वराज्य की साधना की। वे कैसा स्वराज्य चाहते थे इसका उत्तर एक शब्द में रामराज्य है।[6]

वाल्मीकि रामायण में रामराज्य काल की स्थिति का सविस्तार वर्णन मिलता है उसका कुछ अंश इस प्रकार है --

रामराज्य के निवासी अत्यंत प्रसन्न और संतुष्ट थे। वे धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ और सत्यवादी थे, कोई कंगाल नहीं था। कोई गृहस्थ ऐसा न था जो धन-धान्य, गौ और अश्व से रहित हो। सभी स्त्री-पुरुष पूर्ण सदाचारी थे। सब लोग अच्छा भोजन करते थे और दान देते थे। सभी लोग आस्तिक, सुशिक्षित, प्रसन्न, स्वस्थ, रूपवान् और देशभक्त थे। राजाराम

की विलक्षणताओं का वर्णन करते हुए नारद जी कहते हैं -- राजाराम विद्वान्, संयमी, बुद्धिमान् और वक्ता है। वे धर्म को जानते हैं वचन को पूरा करते हैं। रात-दिन प्रजा के हित में लगे रहते हैं वे साधु स्वभाव, मधुरभाषी, प्रियदर्शन और प्रजा की रक्षा करने वाले हैं। समुद्र के समान गंभीर और हिमालय के समान धैर्यवान, पृथ्वी के समान क्षमाशील और कालाग्नि के समान प्रतापी हैं। ऐसी अनेक अच्छाई राजा राम में थी।[7]

रामराज्य का यही चित्र है। ऐसी ही शासन व्यवस्था की स्थापना करने के लिए गाँधी जी के रामराज्य के दर्शन कहीं नहीं हो रहे हैं। अतः राष्ट्र के कर्णधारों का, देश के शासकों का, नेताओं का लोकसेवकों का, चिंतकों, नीति निर्माताओं और सर्वसाधारण का कर्त्तव्य है कि वे रामराज्य के समान शासन स्थापित करने के लिए हर संभव उपाय करें, तभी गाँधी दर्शन एवं रामराज्य सार्थक होगा। सुखी प्रजा ही रामराज्य का प्रमाण हो सकता है।

❑

संदर्भ

1. गाबा, ओमप्रकाश -- राजनीतिक विचारक विश्वकोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2001, पृ. 67
2. कृतिका -- अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, लखनऊ, जनवरी-दिसंबर 2015, पृ. 270-271
3. चौधरी डॉ. इंद्रनाथ -- राम कहानी, पंडित तोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 1992, पृ. 146
4. प्रतियोगिता दर्पण का वार्षिकी अंक, आगरा 2012, पृ. 1231
5. डॉ. रंजन एवं मुकेश राय -- गाँधी, नेहरू और टैगोर, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1998, पृ. 8
6. इंटरनेट पर लेखिका रागिनी नायक का लेख, पृ. 3
7. डॉ. प्रेमशंकर -- रामकथा और तुलसी, कॉलेज बुक डिपो जयपुर, 1998, पृ. 51

डॉ. अनुपमा यादव

भ्रष्टाचार एवं शिक्षा की गुणवत्ता

मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्मप्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शों से संवलित और बहुमुखी व्यक्तित्त्व से युक्त होता है। शिक्षा सर्वांगीण विकास का सशक्त माध्यम एवं स्वावलंबन का आधार है। यह एक ऐसा तत्त्व है जो मानव का न केवल सर्वांगीण विकास करता है वरन् उनका शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के साथ ही उनके चरित्र का भी निर्माण करता है। शिक्षा एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके दो पहलू होते हैं शिक्षक एवं छात्र। शिक्षक वह जो छात्र की ज्ञान पिपासा की तृप्ति करता है।

सब धरती कागज करूँ, लेखनी सब बनराय,
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा ना जाय।।

यह वाक्य गुरु की महिमा का बखान करने के लिए काफ़ी है। प्राचीनकाल में गुरु और शिष्य के बीच सम्मान व समर्पण की महत्त्वपूर्ण भावना थी किंतु आधुनिक काल में समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं और यह परंपरा धीरे-धीरे समाप्त होने लगी, इसका मुख्य कारण एक दूसरे के प्रति खंडित होते विश्वास, जीवन मूल्यों का ह्रास एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है। इन्हीं के परिणामस्वरूप सारे आदर्श, सारी मान्यताएँ और सांस्कृतिक विरासत के स्थान पर दूषित राजनीति हावी हुई, शिक्षण संस्थाएँ भी इससे प्रभावित हुई।

भ्रष्टाचार आज का एक बहुचर्चित और विवादित विषय है। यह दीमक की तरह समाज को खोखला कर रहा है, ऐसा कोई भी देश नहीं जो भ्रष्टाचार से अछूता हो और ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जो भ्रष्टाचार से ग्रसित न हो। शिक्षा जैसा पवित्र क्षेत्र भी इसकी चपेट में आ चुका है। ऐसा कहना ग़लत नहीं होगा कि सबसे ज़्यादा भ्रष्टाचार शिक्षा के क्षेत्र में पाया जाता है। किसी देश का विकास उसकी शिक्षा नींव पर आधारित है। दुनिया के नक़्शे में जापान का क्षेत्रफल भारत के उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल के बराबर होगा लेकिन

शिक्षा के स्तर में विश्व में अव्वल है। जापान में कितनी सूनामी आई और गई पर शिक्षा का स्तर इतना मज़बूत है कि जापान के विकास के स्तर को उसने नीचे नहीं गिरने दिया। इसका श्रेय भ्रष्टाचार मुक्त शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षकों को दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य ने अपनी कृति 'अर्थशास्त्र' में लगभग तेईस सौ वर्ष पूर्व कहा था कि कोई भी राजस्व पद जीभ में रखे हुए मधु के समान है। जीभ पर मधु हो और उसका स्वाद नहीं लिया ऐसा कोई भी नहीं, उसी तरह भ्रष्टाचार कम और ज़्यादा प्रमाण में अस्तित्त्व में होता है। प्राचीन एवं मध्य युगीन भारत में भ्रष्टाचार बहुत से क्षेत्रों में पाया जाता था लेकिन शिक्षा का क्षेत्र बहुत मात्रा में इस बुराई से अनछुआ हुआ था केवल कुछ वर्गों को ही शिक्षा देने का अधिकार था। इन शिक्षकों की नियुक्ति उनके वर्ग व्यवस्था एवं योग्यता के आधार पर की जाती थी। वे सेवा के प्रति परम निष्ठावान् थे तभी तो महात्मा गौतम बुद्ध, शिवाजी महाराज, चंद्रगुप्त, अकबर इत्यादि प्रतिभाशाली राजा हुए। इन राजाओं को बनाने में उनके गुरुओं का बहुत बड़ा योगदान था। भारत में प्राचीन काल से ऐसे नामचीन विश्वविद्यालय हो चुके हैं कि जिन्होंने ऐसे विद्यार्थी दिए जिन्होंने भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि विश्व में भी अपने विचारों का झंडा लहराया तथा विश्व को भारत की संस्कृति के प्रति आकर्षित किया एवं भारत को विश्वगुरु की उपाधि दिलाई, इसमें शीर्ष स्थान पर नालंदा विश्वविद्यालय को रखना उचित होगा जो आज खंडहर में तब्दील हो चुका है। इस विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए विदेशी छात्र अपनी जी जान लगा देते थे।

वर्तमान स्थिति में शिक्षा का महत्त्व आज भी वही है जो भूतकाल में था। वर्तमान परिवेश में तो शिक्षा का महत्त्व सैकड़ों गुना बढ़ चुका है, क्योंकि आज का छात्र नैतिकता, संस्करण, संस्कृति इन चीजों से कोसो दूर है; ज्ञान का ऊपरी दिखावा है। इन बुराईयों का दायित्व समाज शिक्षकों पर थोपता है, पर ताली एक हाथ से नहीं बजती है। सभी सुविधाऐं होने के बावजूद आज के विद्यार्थी एवं शिक्षक अपने दायित्व से क्यों खिसकते जा रहे हैं इस पर गंभीरता से विचार करना अनिवार्य हो चुका है। यह जग जाहिर हो चुका है कि शिक्षा के क्षेत्र में फैला हुआ भ्रष्टाचार आज कैंसर बन चुका ।

योग्य शिक्षकों की गुणवत्ता के आधार पर नियुक्ति नहीं होने के कारण समाज में अनैतिकता फैलती जा रही है। आज प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, कनिष्ठ एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों के पदों की नियुक्ति की बोली लग रही है, बड़े गर्व से लोग कहते हैं कि शिक्षक की पद की नियुक्ति के लिए हमने लाखों ख़र्च किए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अब ऐसा समय आ गया है कि लोग भ्रष्टाचार करने में शर्म महसूस नहीं करते बल्कि उस पर गर्व करते हैं। इसका समाधान क्या है? क्या इनकी नियुक्ति निष्पक्ष आयोगों से की जाए? अर्थशास्त्र, जिसकी रचना ढाई सौ साल ई.पू. हुई। पर एक

गुप्त सर्वेक्षण के अनुसार आयोग भी तो भ्रष्टाचार में लिप्त है। जो शिक्षक सिफ़ारिश या धन के बल पर नियुक्त होते हैं क्या वे सही में अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान् होते हैं, इसका सही जबाब न में ही देना पड़ेगा। शिक्षा एक पवित्र क्षेत्र है जो समाज को सुख-समृद्धि एवं विकास की ओर ले जाता है। यह सेवाभावी क्षेत्र है जिसमें इस सेवा के प्रति निष्ठा और अनिवार्य रूप से योग्यताएँ निश्चित हैं।

छठे वेतन आयोग ने शिक्षकों के वेतन में भारी मात्रा में वृद्धि की है। इसके पीछे शिक्षा के क्षेत्र में सुधार में विद्वान् लोगों को भर्ती करना था। इस सेवा के प्रति गुणवान लोगों को आकर्षित करना था क्योंकि व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वेतन भी अच्छे लोगों को आकर्षित करने का उत्तम साधन है। इसी कारणवश हमारे राष्ट्र के प्रथम नागरिक महामहिम राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एवं वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों को उच्चतम वेतन एवं उच्च सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। यही मापदंड सरकार ने शिक्षकों के प्रति उपयोग में लाया गया है, पर इसका दूसरा परिणाम शिक्षकों के पदों के बाज़ारिक मूल्यों में बढ़ोत्तरी हुई है। फिर भी आप ऐसे शिक्षकों से नैतिकता की अपेक्षा करने की भूल कैसे कर सकते हैं?

शिक्षक भी एक इंसान है, उस पर भी समाज के नीति नियमों का असर पड़ता है शिक्षक भी समाज का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है, केवल इस कलयुगी दुनिया में शिक्षकों से ही नैतिकता की अपेक्षा क्यों? एक तरीक़े से देखा जाए तो अपेक्षा करना समाज का हक़ है। परंतु समाज का भी कुछ दायित्व बनता है कि शिक्षकों को सम्मान की नज़रों से देखा जाए और उनकी योग्यता के आधार पर नियुक्त होने के लिए समाज को आवश्यक क़दम उठाने की पहल करनी चाहिए। परंतु यह पवित्र पेशा सिर्फ़ पैसा कमाने का जरिया बन चुका है। चारों ओर भ्रष्टाचार फैला हुआ है, शिक्षा भी इससे अलग नहीं है पर शिक्षा में फैला हुआ भ्रष्टाचार हमारे विकास को उजाले से अंधकार की ओर, सत्य से असत्य की ओर ढकेल रहा है। इसके लिए केवल शिक्षक ही ज़िम्मेदार है ऐसा कहना ग़लत होगा, इसके लिए भ्रष्ट शासन की शिक्षा प्रणाली, समाज के ठेकेदार एवं शिक्षा माफिया ज़िम्मेदार है जो समाज को दीमक की तरह खोखला कर रहे हैं। सभी समस्याओं की जड़ शिक्षा में फैला हुआ भ्रष्टाचार है। इस ज्वलन क्षेत्र के प्रति समाज को जागरूक बनाना आवश्यक है।

❑

डॉ. दीप्ति गुप्ता

ईमान

ईमान को क्या हो गया है
रोते-रोते सो गया है
पहले रहता था दिलों में
आज बेघर हो गया है

हर गली, हर सहन, नुक्कड़
हो गये बेरहम क्यों कर
ठोकरों पे मार ठोकर
उसको घायल कर दिया है
बेसहारा और विवश वो
आज कितना हो गया है
ईमान को क्या हो गया है...

मान उसका खो गया सब
नाम उसका मिट गया अब
झूठ के नीचे दबा वह
कालिमा में धँस गया है
पंक में वो फँस गया है
वो नकारा हो गया है
ईमान को क्या हो गया है...

जो भी उसका तेज था
और अभी तक शेष था
वो भी अब निस्तेज होकर
खो अँधेरों में गया है
हो गया विकलांग बिल्कुल
अधमरा वो हो गया है
ईमान को क्या हो गया है!

❑

(2) अंतर्यात्रा

क्या तुमने कभी अंतर्यात्रा की है?
नहीं....???
तो अब करना
अपने अंदर बसी एक-एक जगह पर जाना
किसी भी जगह को अनदेखा, अनछुआ
मत रहने देना
तुम्हें अपने अंदर की, ख़ूबसूरत जगहें
बड़ी प्यारी लगेंगी, तुम्हें गर्व से भरेंगी
पर गर्व से फूल कर, वहीं अटक मत जाना
अपने अंदर बसी, बदसूरत जगहों की
ओर भी बढ़ना.....,
संभव है; तुम उन पर रुकना न चाहो

पर, उन्हें न देखना तुम्हारी कायरता होगी
तुम्हारे अंदर की सुंदरता तुम्हें गर्व देंगी
तो, तुम्हारी कुरूपता तुम्हें शर्म देगी
तुम्हारा दर्प चकनाचूर करेगी,
पर...निराश न होना
अंदर छुपी कुरूपता का, कमियों का, खामियों का...
एक सकारात्मक पक्ष होता है,
वे हमें दर्प और दंभ से दूर रखती हैं,
हमारे पाँव ज़मीन पर टिकाए रखती हैं,
हमें इंसान बनाए रखती है!

जबकि अंदर की ख़ूबसूरत परतों का,
गुणों का, ख़ूबियों का एक नकारात्मक पक्ष होता है
वे हमें अनियंत्रण की सीमा तक कई बार दंभी बना देती हैं,
आपे से बाहर कर देती हैं...!
सो, अपनी अंतर्यात्रा अधूरी मत करना!
अंदर की सभी परतों को, सभी जगहों को
खोजना, देखना और परखना
तभी तुम्हारी अंतर्यात्रा पूरी होगी!

ऐसी अंतर्यात्रा किसी तीर्थयात्रा से कम नहीं होती!!!
वह अंदर जमा अहंकार और ईर्ष्या, लोभ और मोह,
झूठ और बेईमानी का कचरा छाँट देती है!
हमारे दृष्टिकोण को स्वस्थ और विचारों को स्वच्छ
बना देती है, हमारी तीक्ष्णता को मृदुता दे,
हम में इंसान के जीवित रहने की
संभावनाएँ बढ़ा देती है...!

काशी और काबा से अच्छी और सच्ची है यह यात्रा....!
जो हमें अपनी गहराईयों में उतरने का मौका देती है!!
घर बैठे अच्छे और बुरे का विवेक देती है!!!

❑

डॉ. किरण त्रिपाठी

भारत में दल-बदल की स्थिति

प्राचीन विश्व की लोकतांत्रिक संस्थाओं की तुलना आधुनिक राजव्यवस्था की अवधारणा से किया जाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। वास्तव में राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं का विकास समय-समय पर सामाजिक परिवर्तनों और आवश्यकताओं के अनुरूप चला और समाज में निहीत आर्थिक शक्तियों के समीकरण उन्हें संचालित करते रहे हैं। लोकतंत्र की आधुनिक अवधारणा का विकास यूरोप की औद्योगिक क्रांति के बाद ही देखने को मिलता है। इस क्रांति के फलस्वरूप यह परंपरागत सामाजिक ढाँचा, जो मध्ययुगीन राज व्यवस्थाओं का आधार था, समाप्ति की दिशा में अग्रसर होने लगा।

लोकतांत्रिक परंपरा का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना संस्कृति और सभ्यता के अन्य सामाजिक संस्थाओं का अति प्राचीन व्यवस्था में आम सहमति से कार्य संचारण किया जाता था। जिसे समाज शास्त्री आदिम लोकतंत्र के नाम से संबोधित करते हैं। यद्यपि एथेंस की राज्य व्यवस्था अपने काल का एक अपवाद थी। साथ ही अन्य तत्कालीन यूनानी नगर राज्यों के लिए एक सामान्य व्यवस्था नहीं थी क्योंकि उनमें भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्रचलित थीं। बुद्धकालीन भारत में विविध जनपदों में गणतांत्रिक व्यवस्था होने के संकेत मिलते हैं।

पुनर्जागरण का प्रभाव शासन व्यवस्था पर पड़ा और एकतंत्रीय शासन प्रणालियाँ दुर्बल होती गईं। पुनर्जागरण के सद्वर्ती सुधार आंदोलन में धर्म और राज्य तथा व्यक्ति और राज्य के संबंधों को पुनः परिभाषित करने की दिशा में भी प्रयत्न किया। फ्रांस की राज्यक्रांति ही वह ऐतिहासिक बिंदु है जहाँ से हम लोकतंत्र के आधुनिक विकास को स्पष्ट देख सकते हैं यद्यपि राज्य शासन के विभिन्न रूपों का उल्लेख राजतंत्र, कुलीनतंत्र, निरंकुशतंत्र, लोकतंत्र आदि की शब्दावली में प्लेटो के काल से ही राजनीति विज्ञान के विचारक अपने मत प्रकट करते आ रहे हैं और अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि और दृष्टिकोण के आधार पर विचारक किसी-न-किसी राज्य-पद्धति के समर्थक भी रहे हैं। पुनर्जागरण और सुधार काल से पूर्व

के राजनीतिक विचारकों ने लोकतांत्रिक पद्धति की कठोर आलोचनाएँ की थीं, किंतु उपरोक्त ऐतिहासिक-आर्थिक कारणों से सत्रहवीं शताब्दी में लोकतांत्रिक व्यवस्था के पक्ष में आशा से अधिक विस्तार देखने को मिला तथा जब स्थापित सत्ता वर्ग-सामंत और पुरोहितों के साथ मध्यवर्ग का वास्तविक संघर्ष हुआ तो इस संघर्ष में लोकतंत्र की भावना सर्वोपरि शस्त्र के रूप में उभर कर आई। अमरीका और फ्रांस की राज्य क्रांतियाँ इसी संघर्ष की देन हैं।

लॉक, रूसों और वाल्टेयर जैसे विचारकों के लेखन ने शासन और शासित के बीच के संबंधों को लोक-समीक्षा का विषय बना दिया और ऐसे ज्वलंत प्रश्नों को जन्म दिया जो स्थापित व्यवस्था के लिये असुविधाजनक थे। जैसे, राजा का जनता पर शासन करने का अधिकार, सामंतों के विशेषाधिकार, किसान-मजदूरों और व्यवसायियों को राज्य संचालन का व्यय पूरा करने के लिये करों का भुगतान करना आदि-आदि।

किसी भी प्रजातांत्रिक राज-व्यवस्था में राजनीतिक दलों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान हुआ करता है। किसी भी देश में राजनीतिक दल मात्र उस देश के राजनीतिक वातावरण का ही परिणाम नहीं होते हैं बल्कि वे उस देश के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भोगौलिक, आर्थिक एवं सामाजिक घटकों से भी प्रभावित होते हैं। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं। लोकतंत्र के विभिन्न रूप होते हैं तथा उन रूपों में से कोई भी रूप राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में कल्पना से बाहर है। फलतः दलीय व्यवस्था को लोकतंत्र की रीढ़ कहा जाता है। भारत जैसे विविधता पूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की विशिष्ट भूमिका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभिक वर्षों में एक ही दल अर्थात् कांग्रेस दल का ही प्रभाव रहा। इसलिए स्वतंत्रोत्तर भारतीय दलीय व्यवस्था को एक दल प्रधान बहुदलीय प्रणाली कहकर परिभाषित किया जाता रहा है किंतु समय के साथ-साथ यह द्विदलीय प्रणाली सक्रिय होने लगी। एक तो सत्तारूढ़ दल और दूसरा दल प्रतिपक्ष मे बैठकर अपनी भूमिका का निर्वाह करता था। उस समय भी राजनीतिक व्यक्तियों का एक दल से दूसरे दल में आना-जाना होता था जिसे दल-बदल भी कहते थे। किंतु आना-जाना प्रायः वैचारिक मतभेदों का परिणाम था जिससे राजनीतिक सत्ता पर कोई विशेष नकारात्मक प्रभाव नही पड़ता था। शनैः-शनैः यह प्रवृत्ति विकसित हुई कि वैचारिक समानता रखने वाले समस्त समूहों में टकराव की स्थिति निर्मित होने लगी। व्यक्तिगत महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति तथा नेतृत्व में टकराव जैसे निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर छोटे-छोटे दलों का निर्माण किया जाने लगा और बहुदलीय प्रणाली उभरने लगी।

आज भारत एक बहुदलीय व्यवस्था वाला देश है। यहाँ विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर के दलों का अस्तित्त्व सहजता से देखने को मिल रहा है। बहुदलीय प्रणाली के बढ़ते प्रभाव के कारण व किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने के कारण बड़े दलों ने सत्ता का लोभ देकर अन्य दलों के सदस्यों को अपनी ओर आकर्षित करने का कार्य

प्रारंभ कर दिया। स्पष्ट बहुमत न मिलने के कारण छोटे-छोटे क्षेत्रीयों दलों का महत्त्व भी सरकार के निर्माण में बढ़ने लगा। इसके परिणामस्वरूप स्वाभाविक रूप से दल-बदल की घटनाओं की अभिवृद्धि होने लगी। क्षेत्रियों दलों के साथ-साथ निर्दलीय लोगों ने भी सत्ता प्राप्ति की कामना के कारण संभाविक शासक दल में शामिल होना प्रारंभ कर दिया। संभावित सरकार निर्माण के जिस जिज्ञासु दल ने इन्हें पद प्रदान करने का लालच दिया वे उसी दल में सम्मिलित होने लगे और इस प्रकार संसदीय प्रणाली में दल-बदल जैसी घटनाएँ दैनिक कार्यक्रम का अंग बन गई।

भारतीय बहुदलीय राजनैतिक व्यवस्था में दल-बदल जैसी घटनाएँ घटित होना सामान्य राजनैतिक घटक माना जाने लगा था। किंतु इस प्रवृत्ति ने राजनैतिक व्यवस्था को नकारात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित करना प्रारंभ कर दिया। फलतः इस समस्या के निदान हेतु किसी भी प्रकार के संवैधानिक नियत्रंण की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। दल-बदल की इस प्रवृत्ति ने एक विकराल समस्या का स्वरूप ग्रहण कर लिया तथा विषय विशारदों व अध्ययनकर्ताओं ने इसको समझने व परिभाषित करने और उसके निवारण के उपाय सुझाने की अभिलाषा जाग्रत हुई।

लोकतांत्रिक देशों में दल-बदल की घटनाएँ असाधारण घटनाएँ हैं और दल-बदल की घटनाओं का अन्योन्याश्रित संबंध है। भारत जैसे बहुदलीय प्रणाली वाले देश में दल-बदल की घटनाओं की संख्या और भी अधिक है। विश्व के प्रजातांत्रिक इतिहास में यह कोई अनूठा तथ्य नहीं है। विधायकों द्वारा दल-बदल की जो विशेषताएँ, अभिप्रेरणाएँ, कारण और विभिन्न स्वरूप भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राज्यों की राजनीति और राष्ट्रीय राजनीति में उभरे हैं। वे प्रायः अन्य देशों के अनुभवों से मिलते-झुलते हैं किंतु यह अवश्य देखने को मिलता है कि भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों के सदस्य निहित यर्थाथ तथा पदलोलुपता के लिए दल बदलते रहते हैं। इनके दल-बदल का कारण विचारधारा अथवा नीति से कोई संबंध नहीं होता है।

भारत में संसदीय लोकतंत्र का विकास स्वतंत्रता के साथ ही हुआ। दलीय व्यवस्था को लोकतंत्र का प्राण कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि प्रजातंत्र चाहे किसी भी स्वरूप का क्यों न हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में उसका कार्यकारण संभव नहीं है लोकतांत्रिक शासन के लिए राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं, क्योंकि इनके अभाव में न तो सिद्धांतों की संघटित अभिव्यक्ति हो सकती है और न ही नीतियों का व्यवस्थित विकास। किसी भी देश में राजनीतिक दल उस देश की राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम नहीं होते, वरन् उस देश के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और आर्थिक पर्यावरण से भी प्रभावित होते हैं। फलतः राजनीतिक दल अर्थात् दलीय व्यवस्था प्रजातंत्र की आधारशिला की भूमिका का निर्वाह करती है।

भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक शासन वाला देश है। यह शासन संचालन का अधिकार उसी दल का होता है जिसके पास व्यवस्थापिका में सदस्यों का पूर्ण बहुमत हो। भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरूप पश्चिम के प्रजातांत्रिक राजनीतिक दलों से सर्वथा भिन्न है। इसके आधार भी विविधतापूर्ण है। जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, भाषावाद, सांप्रदायिकता, संगठन में तदर्थवाद की पोषक नीतियों और कार्यक्रम की अस्पष्टता जनता को लुभाने के लिए विवेक और तर्क के स्थान पर भावनाओं को भड़काने की कार्यप्रणाली, असामाजिक और आपराधिक तत्त्वों से निकटता दल संचालन के लिए काले धन का सहयोग लेना, दल के अंदर केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति और व्यक्तिगत निहित स्वार्थी दलबदल आदि दोषों से पीड़ित है।

दल-बदल से आशय है, ''किसी विधायक का अपने दल अथवा निर्दलीय मंच का परित्याग कर किसी अन्य में जा मिलना, नया दल बना लेना या निर्दलीय स्थिति अपना लेना अथवा अपने दल की सदस्यता त्यागे बिना ही बुनियादी मामलों पर सदन में अपने दल के विरुद्ध मतदान करना दल-बदल कहलाता है।

इस परिभाषा के अंतर्गत वे सब दल बदल समाहित होंगे जो किसी विरोधी दल या सत्तारूढ़ संयुक्त मोर्चे के विभिन्न घटक दलों अथवा विरोधी पक्ष में बैठने वाला विभिन्न दलों के बीच हो। दल-बदल की परिभाषा के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्यता नहीं है। अंग्रेज़ी में इसको 'क्रॉसिंग ऑफ फ्लोर', 'कार्पेट', 'क्रासिंग', 'पॉलिटिक्स ऑफ डिफैक्शन', 'पॉलिटिक्स ऑफ म्यूजिकल चेयर्स' आदि शब्दों से संबोधित किया गया है, परंतु इन सभी में 'पॉलिटिक्स ऑफ डिफैक्शन' अर्थात् 'दल-बदल की राजनीति' शब्द का प्रयोग सर्वाधिक और तर्कसंगत होता है।

समय-समय पर प्रचलित राजप्रणालियों के अनुभव व संघर्ष के पश्चात् शासन तंत्र में विकसित सर्वश्रेष्ठ शासन पद्धति के रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्वीकृति प्रदान की गई। दल-बदल के बढ़ते पैरों को रोकने के लिए राजीव गाँधी ने 52वें संविधान संशोधन, 1985 लेकर आए जिससे दल-बदल पर अंकुश तो लगा परंतु यह पूर्णतः सफल नहीं रहा। फिर 91वें संविधान संशोधन, 2003 द्वारा दसवीं अनुसूची के उपबंधों में एक परिवर्तन किया गया। इसने एक उपबंधों को समाप्त कर विभाजन के मामले में दल-बदल के आधार पर अयोग्यता नही मानी जाएगी। परंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह प्रावधान पूर्ण रूप से दल बदल के विकराल दानव को मारने में सक्षम है? आज भी दल-बदल की राजनीति अपने मूर्त्त रूप को लिए जिए जा रही है और हम आज भी दलों पर अपना विश्वास बनाकर अपने मत दिए जा रहे हैं। क्या दल बदल की बीमारी जो भारत में निवास करती है उसका समाधान होना इतना कठिन है कि वह लोकतंत्र में आज भी विद्यमान है।

❑

डॉ. विदुषी शर्मा

दांपत्य अधिकारों के प्रतिस्थापन की प्रासंगिकता

परिचय

दांपत्य अधिकारों के प्रतिस्थापन की प्रासंगिकता पर कुछ भी कहने से पूर्व हम 'दांपत्य' शब्द का अर्थ जानेंगे। दांपत्य वह है जो स्त्री और पुरुष दोनों को एक बंधन में बांधकर एक करता है। यह बंधन 'विवाह' कहलाता है एवं इसके बाद का जीवन दांपत्य जीवन कहलाता है। दंपत्ति यानि जोड़ा। स्त्री और पुरुष का जोड़ा, जिसे एक धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक क़ानूनी, मान्यताओं, रीति -रिवाजों के आधार पर स्वीकृति प्रदान की जाती है। विवाह के उपरांत स्त्री और पुरुष पति-पत्नी बनकर जिस जीवन का निर्वाह करते हैं वह दांपत्य जीवन कहलाता है। दांपत्य जीवन एक धर्म है, आधार है, विश्वास है, प्रेम है, समर्पण है, प्रतिज्ञा है, पवित्रता है, और भी बहुत कुछ है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

विवाह-पौराणिक पृष्ठभूमि

विवाह शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से दो अर्थों में होता है। इसका पहला अर्थ वह क्रिया, संस्कार या पद्धति है जिसमें पति-पत्नी के स्थायी संबंध का निर्माण होता है। प्राचीन काल से आधुनिक समय तक विवाह परिवार की स्थापना करने वाली एक पद्धति, एक नियम, एक बंधन है, एक परंपरा रही है।

मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि के अनुसार, ''विवाह एक निश्चित पद्धति से किया जाने वाला, अनेक विधियों से संपन्न होने वाला और एक कन्या को पत्नी बनाने वाला एक संस्कार है।''

विवाह का दूसरा अर्थ समाज में प्रचलित एवं स्वीकृत विधियों द्वारा स्थापित किया जाने वाला दांपत्य संबंध और पारिवारिक जीवन भी होता है। इस संबंध से पति-पत्नी को अनेक अधिकार तथा कर्त्तव्यों की प्राप्ति होती है। अनादि काल से ही 'विवाह' संबंधी धारणा को

सभ्य समाज द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। सत्य सनातन धर्म में विवाह के बारे में विभिन्न धर्म ग्रंथों में विधिवत् वर्णन है। विवाह एक पवित्र संस्कार है। हिंदू धर्म में 16 संस्कार माने गए हैं, जिनमें से विवाह एक प्रमुख संस्कार है। इस प्रकार चार आश्रम हैं--

1. ब्रह्मचर्य आश्रम।
2. गृहस्थ आश्रम।
3. वानप्रस्थ आश्रम।
4. संन्यास आश्रम।

इन चारों आश्रमों में भी गृहस्थाश्रम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि यह समाज का निर्माण करता है। जीवन से संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण कार्य इसी गृहस्थ आश्रम में पूर्ण किए जाते हैं। इसी आश्रम में 'सृजन' यानि नव निर्माण संभव है। यहाँ निर्माण होता है नवजीवन का, सृष्टि का, संस्कारों का, मूल्यों का, नैतिकता का, प्रेम का, त्याग का, उन्नति का, भावनाओं का, कर्त्तव्य का, अधिकारों का, किं बहुना सृष्टि-चक्र इसी दांपत्य जीवन पर आधारित है यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ऋग्वेद के विवाह सूक्त 10/85 अथर्ववेद में 14/1, 7/37 एवं 7/38 सूक्त में पाणिग्रहण अर्थात् विवाह विधि, वैवाहिक प्रतिज्ञाएँ, पति-पत्नी संबंध, योग्य संतान का निर्माण, गर्भाधान का शुभ मुहूर्त, दांपत्य जीवन, गृह प्रबंध एवं गृहस्थ धर्म का स्वरूप देखने को मिलता है जो विश्व की किसी अन्य सभ्यता में मिले ऐसा संभव हो ही नहीं सकता।

दांपत्य -- वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक आधार

यह हम सभी जानते हैं कि यौवन काल में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। यह स्त्री और पुरुषों को शारीरिक और मानसिक संतुष्टि की ओर अग्रसर करता है। यह प्रकृति का नियम है। समाज में मर्यादा बनी रहे इसलिए हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा युवावस्था में 'विवाह' का प्रावधान किया गया है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। उन्हें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर (कोई भी यज्ञ, धार्मिक कार्य बिना पति-पत्नी के पूर्ण नहीं होता। यहाँ तक की भगवान् को भी पत्नी के बिना यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। एक बार अश्वमेघ यज्ञ जब श्री राम जी कर रहे थे तो सीता जी की अनुपस्थिति में उनकी प्रतिमा स्थापित की गई थी ताकि यज्ञ में पूर्णाहूति सपत्नीक दी जा सके) पर एक दूसरे का साथ चाहिए। जिस प्रकार शिव के साथ शक्ति है, अर्धनारीश्वर का स्वरूप दोनों ही एकाकार हैं, उसी प्रकार दांपत्य जीवन में स्त्री और पुरुष हर क्षेत्र में एकाकार हो कर अधिकारों और कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं। दोनों का मिलन सृष्टि का निर्माण करता है और परोक्ष रूप से सभी कर्म बंधनों का, सभी कार्यक्रमों का, सभी उद्योग धंधों का, विज्ञान-प्रौद्योगिकी का, सभी का संपादन भी यहीं से ही आरंभ होता है क्योंकि यदि 'जीवन' ही नहीं होगा तो यह सब कैसे संभव है?

दांपत्य अधिकार का प्रतिस्थापन और उसकी प्रसांगिकता

दांपत्य जीवन एक अदृश्य बंधन है जिसमें अधिकतर अधिकार एवं कर्त्तव्य अलिखित अवस्था में पाए जाते हैं, या यूँ कहें कि पूर्णतया हमारे संस्कारों पर ही निर्भर हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जैसे रामायण में भी श्रीराम के दांपत्य जीवन में यह सब बातें देखने को मिलती हैं। यानी दांपत्य जीवन का आधार पौराणिक काल से ही यही चला आ रहा है जो सर्वकालिक है, टाइमलेस (Timeless) है। ये सब आधार आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं जितने उस काल विशेष में हुआ करते थे। यह वे आधार हैं जो दांपत्य जीवन को दीर्घकालीन सुखी एवं संपन्न बनाने में सहायक हैं। यह हैं --

1. संयम
2. संतुष्टि
3. संतान
4. संवेदनशीलता
5. संकल्प
6. सक्षमता (शारीरिक-मानसिक)
7. समर्पण

वास्तव में देखा जाए तो यह सभी हमारे भाव हैं। इन्हीं आधारों को लेकर ही हिंदू विवाह अधिनियम बनाए गए हैं तथा समय-समय पर उन में संशोधन भी किया जाता रहा है, जैसे आधुनिक हिंदू क़ानूनों के बनने से पहले बाल-विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह पर प्रतिबंध था, बहु-विवाह का प्रचलन था, विधवा विवाह निषेध था। परंतु समय के साथ-साथ सभी नियम क़ानूनों में बदलाव किए गए तथा इनमें से कुछ ऐसे बदलाव हैं जिन्हें क्रांतिकारी कहा जा सकता है --

जैसे हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1965

जिसने विधवाओं को पुनःजीवन का, अपने स्वत्व को हासिल करने का, अपनी ज़िंदगी को अपने अनुसार जीने का, ख़ुश रहने का, अपने बच्चों की देखभाल करने का, रंगीन सपने देखने का और अपनी दुनिया को भी रंगभरी बनाने का अधिकार दिया जो कि क़ाबिले तारीफ़ है।

1956 के हिंदू दत्तक एवं अनुरक्षण अधिनियम एक हिंदू पत्नी अपने पति द्वारा अनुरक्षण की अधिकारिणी है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 का संबंध भी पत्नी तथा बच्चों के अनुरक्षण से है।

हालाँकि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 में पारित किया गया एक क़ानून है। इसी

कालावधि में तीन अन्य महत्त्वपूर्ण क़ानून पारित हुए। ये हैं --

1. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
2. हिंदू अव्यस्कता तथा संगरक्षता अधिनियम, 1956
3. हिंदू दत्तक तथा भरण पोषण अधिनियम, 1956

ये सभी नियम हिंदुओं के वैदिक परंपरा को आधुनिक बनाने के ध्येय से लागू किए गए थे। परंतु समय के साथ-साथ यह सब नियम क़ानून भावनाओं, प्रेम, समर्पण, त्याग, कर्त्तव्य, विश्वास आदि के स्थान पर केवल स्वार्थपरता, शारीरिक आकर्षण, आत्मसंतुष्टि, आत्मोत्थान और स्वकेंद्रीकरण तक ही सीमित हो गया है। दांपत्य जीवन प्राचीनकाल से ही हमारी पहचान रहा है, हमारी धरोहर रहा है। यहाँ प्रथम दंपत्ति भगवान् शिव-पार्वती कहे जा सकते हैं। उसके बाद सीता-राम जी, कृष्ण-रुक्मणी, नल-दमयंती, सत्यवान-सावित्री आदि ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने लाख मुसीबत आने पर भी अपने जीवनसाथी को छोड़ा नहीं, धोखा नहीं दिया। परंतु आजकल की नई पीढ़ी संस्कारों के अभाव में केवल स्वयं तक ही सिमटती जा रही है। यहाँ तक कि अपने बच्चों के भविष्य के बारे में भी न सोचकर, विभिन्न प्रकार के क़ानूनों का सहारा लेकर सिंगल पैरेंट बनते जा रहे हैं।

यह सत्य है कि नारी और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं तथा शारीरिक और मानसिक संतुष्टि पर भी दोनों का ही बराबर का अधिकार है। ऋषि वात्स्यायन ने भी कामसूत्र में दांपत्य जीवन के शृंगार रस का वर्णन किया है। परंतु आजकल की युवा पीढ़ी शारीरिक आकर्षण को ही सर्वस्व मानने लगी है। मानसिक सुंदरता, विचारों की सुंदरता, गुणों की सुंदरता फीकी पड़ने लगी है। हम याद करें अपनी दादी, नानी के जमाने की शादियां जहां इतने बेमेल जोड़े हुए, शारीरिक मापदंड और स्वभाव, वातावरण के आधार पर, कहीं पति इतना लंबा है तो पत्नी इतनी छोटी, कहीं एक दूसरे के रंग रूप में इतना भारी अंतर होता था कि जो बच्चे होते थे उनको देखकर साफ़ पता लगता था यह बच्चा मां पर गया है और यह बच्चा बाप पर गया है। पति पत्नी की उम्र में भी बहुत अधिक अंतराल पाया जाता था, 10 से 15 वर्षों तक का भी का अंतर रहा। यहाँ मैं यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि मैं भी व्यक्तिगत तौर पर कई ऐसे जोड़ों को जानती हूँ जिन्होंने अपना दांपत्य जीवन बहुत ही सफलतापूर्वक जिया तथा अपने बच्चों को भी बहुत सुंदर शिक्षा-दीक्षा देकर उन्हें समाज का एक ज़िम्मेदार नागरिक बनाया, जबकि उन दोनों के स्वभाव में बिल्कुल भी समानता नहीं थी। उस जमाने में शादियों से पहले लड़के-लड़की को तो दिखाया ही नहीं जाता था। इसके बाद अति यह होती थी कि शादी के बाद भी सास-ससुर के सामने पति-पत्नी बात नहीं कर सकते थे। पत्नी, पति से ही घुँघट या पर्दा करती थी। अजीब से रीति रिवाज थे। बच्चे होने के बाद भी इन्हीं मर्यादाओं का पालन करना पड़ता था। परंतु फिर भी हमारी उन पौराणिक स्त्रियों ने इन सब का पालन करते हुए अपने परिवार

को बनाया और सफल दांपत्य जीवन जिया। यहाँ पर यह बात विवाद उत्पन्न कर सकती है कि उस जमाने की बात और थी आजकल का जमाना ऐसा नहीं है, तो मैं भी इस बात का समर्थन करती हूँ, क्योंकि उस जमाने में स्त्रियां केवल घर पर ही रहती थीं। उन्हें बाहर की दुनिया का कोई काम नहीं था। बाहर का जीवन उनके लिए था ही नही। परंतु क्या हम केवल एक पक्ष देखकर कुछ सीख नहीं सकते? अपने बच्चों के लिए, अपनी संतान के लिए। सभी को जीवन में सब कुछ नहीं मिलता। जो है उसमें भी रहकर जिया जा सकता है, जब बात हमारे बच्चों के भविष्य की हो। यदि हम अपना दांपत्य जीवन साथ नहीं बिता सकते तो अलग होने में कोई बुराई नहीं है परंतु जब बात बच्चों के जीवन की आती है तो कहीं-न-कहीं अपने स्वत्व को थोड़ा-सा कम किया भी जा सकता है। यह मेरे स्वयं के विचार है। अपवाद हर जगह मौजूद हैं।

इसका एक ज्वलंत उदाहरण सायरा बानो और दिलीप कुमार जी भी कहे जा सकते हैं। जिनकी आयु में लगभग 18 वर्षों का अंतर है तथा इन्हें संतान सुख प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी इनका दांपत्य जीवन एक आदर्श, सुखी एवं संपन्न है।

हमारे इन क़ानूनों ने स्त्री जाति को अधिकार कुछ ज़्यादा ही प्रदान कर दिए जिनसे इनका कुछ ज़्यादा ही संरक्षण होने लगा है। इसका प्रभाव ये पड़ रहा है कि ये इन अधिकारों का ग़लत तरीक़े से प्रयोग करने लगी है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर स्त्री होने का ग़लत फ़ायदा उठाने लगी हैं तथा क़ानून का आश्रय लेकर ग़लत प्रकार से अपने परिवार को ही धमकाने भी लगी हैं। इसी आधार पर पुरुषों के अधिकारों का प्रतिनिधित्व करने वाली अग्रणी संस्था 'सेव इंडियन फैमिली फाउंडेशन' SIFF (Save Indian Family Foundation) हिंदू विवाह अधिनियम संशोधन बिल 2010 को अपने वर्तमान स्वरूप में पारित कराने की कोशिश की। परंतु इस बिल के संशोधन को तीखी आलोचना करते हुए नकार दिया गया।

परंतु वास्तव में अब संशोधन की आवश्यकता हमारे पूरे समाज को है, उसके मूल्यों को है, मान्यताओं को है, नैतिकता को है, मानवता को है। क्योंकि आज का समाज पश्चिमीकरण का अंधानुकरण करते हुए अपने धर्म की, अपनी भारतीयता, अपने भारतीय दर्शन, अपने भारतीय मानवीय मूल्यों को भूलता जा रहा है, जो हमारी सभ्यता और संस्कृति की पहचान रहे हैं। आज के संदर्भ में मुझे एक शेर याद आ रहा है --

''आज दिवस में तिमिर बहुत है जैसे हो सावन की भोर,
मानव तो आकाश की ओर, मानवता पाताल की ओर।''

आज इन दांपत्य अधिकारों के प्रतिस्थापन की प्रासांगिकता का प्रश्न ही नहीं उठता, यदि हमने अपने धर्म, अपने मूल्य, अपनी धरोहर, अपनी भारतीयता को संभाला होता।

दांपत्य जीवन का आधार सदा से ही विश्वास, प्रेम, समर्पण, त्याग, सम्मान, निष्ठा, आपसी मेलजोल, संतुष्टि, संयम आदि गुण ही रहे हैं जो तब भी उतने ही मूल्यवान् थे और आज के युग में तो इनकी ज़्यादा प्रासंगिकता है क्योंकि इन्हीं गुणों के आधार पर तो हम दांपत्य को, रिश्तों को, लगाव को, परिवार को, जीवन को बचा पाएँगे। अपनी आने वाली पीढ़ी को सुरक्षित जीवन, प्रेममय वातावरण तभी तो प्रदान कर पाएँगे जब दांपत्य सुरक्षित होगा, परिवार सुरक्षित होगा। परिवार ही नहीं होगा तो बच्चे संरक्षण कहाँ प्राप्त कर पाएँगे? इसलिए समाज के प्रथम इकाई परिवार को संभालना आवश्यक है जिसके लिए आधार दांपत्य जीवन है इसीलिए दांपत्य का संरक्षण करते हुए समाज का, पूरे देश का संरक्षण संभव हैं।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सृष्टि का आधार स्त्री और पुरुष है, उसी प्रकार समाज का आधार, परिवार का आधार दांपत्य जीवन है। यदि हम स्वयं इसका निर्वहन सही प्रकार से करेंगे तथा दूसरों को ऐसा करने की शिक्षा प्रदान करेंगे एवं स्वयं के आचरण से उदाहरण प्रस्तुत कर, अपनी आने वाली पीढ़ी को ऐसा करने की शिक्षा और अभिप्रेरणा देंगे तो आने वाला समाज हर दृष्टि से सुरक्षित होगा तथा नव भारत के निर्माण में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करेगा।

❑

संदर्भ

1. हिंदू विवाह अधिनियम 1955, अधिनियम धारा 25, धारा 9, धारा 13
2. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1955
3. हिंदू एडॉप्शन और भरण पोषण अधिनियम 1956
4. हिंदू अल्पसंख्यक तथा अभिभावक अधिनियम 1956
5. एक नज़र में : हिंदू विवाह अधिनियम, देश बंधू
6. नए तलाक़, क़ानून से बदल सकते हैं रिश्ते, (अमर उजाला)
7. विवाह की संसिद्धि
8. शून्य विवाह
9. शून्यकरणीय विवाह
10. विवाह अधिनियम संशोधन विधेयक, 2010
11. हिंदू लॉ अधिनियम
12. इंटरनेट साइट्स
13. प्रवचन अवधेशानंद गिरी

कुमारी शालिनी कौशिक

मुस्लिम क़ानून और महिलाएँ

भारतीय संविधान की राजभाषा हिंदी है और देश में हिंदी भाषी राज्यों या क्षेत्रों की बहुलता है। भारत में निम्न राज्य हिंदी भाषी क्षेत्रों में आते हैं -- बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड, इसी के साथ-साथ भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 सभी नागरिकों को समानता का अधिकार भी देता है जिसके चलते भारत का हर नागरिक समान है, उसके साथ धार्मिक आधार पर कोई भी भेदभाव नहीं किया जाता है किंतु भारत के संविधान का यह मौलिक अधिकार सभी धर्मों के व्यक्तिगत मामलों में मौन है और इसीलिए धर्मों के अंदरूनी भेदभाव पर इसका कोई प्रभाव नहीं है। हिंदू हो या मुस्लिम, इन धर्मों में व्यक्तिगत रूप से कौन-सी जाति को ऊँचा समझा जाता है और कौन-सी जाति को नीचे, इन पर हमारा संविधान मौन है। ऐसे ही इन धर्मों में नारी की क्या स्थिति है इस पर भी संविधान का कोई अंकुश नहीं है। वह केवल स्वतंत्र रूप से नारी को अधिकार देकर इन धर्मों के बाहर उसकी स्थिति सुदृढ़ करने की कोशिश कर सकता है। धर्मों को यह आदेश नहीं दे सकता कि ये भी उसे निरपेक्ष रूप से बराबर माने और इसी को देखते हुए सरकार द्वारा पुरानी परंपराओं में ही आज तक उलझे हुए मुस्लिम समाज में निकृष्ट स्तर तक पहुँची महिला की स्थिति को सुधारने के लिए सबसे पहले इस समाज की तीन तलाक़ की प्रथा पर चोट पहुँचाकर उसकी स्थिति को सँभालने की चेष्टा की जा रही है।

भारत में ज़्यादातर मुस्लिम हनफ़ी या सुन्नी हैं, इसी के साथ-साथ मुस्लिम क़ानून की एक और संस्था शिया को मानने वाले मुस्लिम भी भारत में निवास करते हैं, मुस्लिम शासन काल में इस्लामी क़ानून ही भारत का क़ानून था और वैयक्तिक क़ानून को छोड़कर इसके सभी प्रावधान जैसे संविदा विधि, दांडिक विधि, अपकृत्य विधि आदि हिंदुओं व मुसलमानों पर एक समान लागू होते थे, मुगल शासन काल में भारत में हनफ़ी इस्लामी

विधि लागू रही जो ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान क्रमशः समाप्त हुई, यद्यपि इस्लामिक दाण्डिक विधि कुछ आगे तक चली, किंतु 1860 में भारतीय दंड संहिता के अधिनियम के साथ समाप्त हो गई।

भारत में मुसलमानों के संपत्ति अधिकार सूचीबद्ध नहीं हैं, वह मुस्लिम क़ानून की दो संस्थाओं के तहत आते हैं -- हनफ़ी और शिया, हनफ़ी संस्था केवल उन रिश्तेदारों को वारिस के रूप में मानती है जिनका पुरुष के माध्यम से मृतक से संबंध होता है, इसमें बेटे की बेटी, बेटे का बेटा और माता-पिता आते हैं। दूसरी ओर शिया संस्था ऐसा कोई भेदभाव नहीं करती इसका मतलब है जिन वारिसों का मृतक से संबंध महिलाओं के जरिए है, उन्हें भी अपना लिया जाता है। ऐसे ही सुन्नी संप्रदाय की मलिकी विचार पद्धति की किताब-अल-मुवता में मलिकी विचारधारा के सिद्धांत मिलते हैं, इस विचार पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि परिवार के मुखिया की शक्ति स्त्रियों और बच्चों पर अत्यधिक होती है। केवल इसी विचार पद्धति के अंतर्गत विवाहिता स्त्री अपनी संपत्ति की निरपेक्ष स्वामिनी नहीं होती है और पति की अनुमति के बिना अपनी संपत्ति का विक्रय दान नहीं कर सकती है किंतु यह विचार पद्धति भारत में प्रचलित ही नहीं है इसलिए हिंदी भाषी क्षेत्रों की मुस्लिम महिलाओं के अधिकार इससे प्रभावित नहीं होते क्योंकि यह उत्तरी अफ्रीका, मोरक्को, स्पेन में प्रचलित है।

शिया और सुन्नी विधि दोनों में ही महिलाओं के अधिकार पृथक्-पृथक् हैं इसका अध्ययन हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं --

1. **मातृत्व :** शिया विधि के अंतर्गत कुँवारी महिला द्वारा उत्पन्न संतान माँ विहीन मानी जाती है परंतु विवाहित महिला यदि परपुरुषगमन द्वारा संतान उत्पन्न करती है तो वह उस संतान की माँ मानी जाएगी, जबकि सुन्नी विधि के अंतर्गत जिस महिला को बच्चा पैदा होता है वह उसकी माँ होती है और कोई संतान माँ विहीन नहीं मानी जाती।
2. **वलायत :** सुन्नी विधि के अंतर्गत लड़के की सात वर्ष की आयु पूरी होने और लड़की के वयस्क होने तक माँ अभिरक्षा की हक़दार होती है, जबकि शिया विधि के अंतर्गत लड़के के दो साल का होने और लड़की के सात साल का होने तक माँ उनकी वली रहती है।
3. **वृद्धि औल का सिद्धांत :** सुन्नी विधि के अंतर्गत वृद्धि औल का सिद्धांत -- जिसके बाद यदि हिस्सेदार का कुल योग इकाई से अधिक होता है तो प्रत्येक हिस्सेदारों का अंश कम हो जाता है सभी हिस्सेदारों पर समान रूप से लागू होता है परंतु शिया विधि के अंतर्गत वृद्धि औल, का सिद्धांत केवल पुत्रियों और बहनों के प्रति

ही लागू होता है अर्थात् यदि हिस्सेदारों का कुल योग इकाई से अधिक होता है तो केवल पुत्रियों व बहनों का हिस्सा कम होता है।

मुस्लिम क़ानून के तहत विरासत के क़ानून काफ़ी सख़्त हैं, उनकी विचारधारा के मुताबिक महिलाओं को पुरुष से आधी तवज्जो मिलती है इसलिए बेटो को बेटी के हिस्से से दोगुना मिलता है; लेकिन बेटी को जो भी संपत्ति विरासत में मिलेगी, उस पर उसका पूर्ण अधिकार होगा, अगर कोई भाई नहीं है तो उसे आधा हिस्सा मिलेगा और वह अपनी मर्ज़ी से क़ानूनी तौर पर उसका प्रबंधन, नियंत्रण और निपटारा कर सकती है।

वह उन लोगों से भी गिफ्ट्स ले सकती है जिनसे वह संपत्ति हासिल करेगी, यह विरोधाभासी है क्योंकि वह पुरुष के हिस्से का केवल एक तिहाई हिस्सा पा सकती है लेकिन बावजूद इसके बिना किसी परेशानी के तोहफे ले सकती है। जब तक बेटी की शादी नहीं होती उसे माता-पिता के घर में रहने और सहायता पाने का अधिकार है लेकिन शादी के बाद की स्थिति भिन्न है।

मुस्लिम विधि में विवाह एक संस्था है, यह संस्था मानव सभ्यता का आधार है। कुरान में लिखा है कि ''हमने पुरुषों को स्त्रियों पर हाकिम 'अधिकारी' बनाकर भेजा है -- दूसरे शब्दों में मुस्लिम विधि में पत्नी को पति के अधीन स्वीकार किया गया है, महत्त्वपूर्ण वाद **अब्दुल कदीर बनाम सलीमन, 1846,** में न्यायाधीश महमूद और न्यायाधीश मित्तर ने सबरुन्निशा के वाद में मुस्लिम विवाह को संविदात्मक दायित्व के रूप में बल दिया है और मुस्लिम विवाह को विक्रय संविदा के समान बताया है और यही विक्रय संविदा मुस्लिम विधि में महिला की स्थिति को न्यायाधीश महमूद के शब्दों में कुछ यूँ व्यक्त करती है --

''मुस्लिम विधि में मेहर वह धन है अथवा वह संपत्ति है जो पति द्वारा पत्नी को शादी के प्रतिफल के रूप में दिया जाता है अथवा देने का वचन दिया जाता है,'' इसी प्रकार न्यायाधीश मित्तर ने सबरुन्निशा के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय का निर्णय देते हुए कहा कि ''मुस्लिम विधि में विवाह विक्रय संविदा के समान एक सिविल संविदा है विक्रय में मूल्य के बदले संपत्ति का अंतरण होता है, विवाह की संविदा में पत्नी संपत्ति और मेहर मूल्य होता है।''

इस प्रकार यदि हम एकतरफ़ा रूप से देखें तो इस्लाम में महिला की स्थिति को संपत्ति समान ही पाएँगे किंतु इसे पूर्ण स्थिति नहीं कहा जा सकता है क्योंकि जैसे कि संविदा में पक्षकारों की स्वतंत्र इच्छा व सहमति आवश्यक है वैसे ही मुस्लिम विधि में विवाह के पक्षकारों की भी स्वतंत्र इच्छा व सहमति आवश्यक है और इसलिए यहाँ स्त्री भी स्वतंत्र इच्छा व सहमति के प्रयोग द्वारा ही विवाह संस्था में प्रवेश का अधिकार रखती

है जैसे कि **'हसन बनाम कुट्टी जेनेवा'** में कहा गया कि विवाह में सहमति आवश्यक तत्त्व है और पिता की अनुमति वयस्क पुत्री की सहमति नहीं ले सकती। ''ऐसे ही **'एस. मुहीदुद्दीन बनाम ख़तीजा बाई 1939,** 41 बंबई लॉ रिपोर्टर 1020 के वाद में एक शाफई 'वयस्क' लड़की की सहमति के विरुद्ध पिता के द्वारा कार्यान्वित विवाह मान्य नहीं धारण किया गया, इसी प्रकार ''**अहमद उन्निसा बेगम बनाम अकबर शाह** ए.आई.आर. 1942 पेशावर 42 में कहा गया कि जहाँ विवाह के लिए सहमति न प्राप्त की गई हो, स्त्री की इच्छा के विरुद्ध विवाह की पूर्णावस्था विवाह को मान्य नहीं बना देगी।''

भारत में बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 के द्वारा पुरुषों का 21 वर्ष से कम की अवस्था में और स्त्रियों का 18 वर्ष से कम की अवस्था में विवाह अपराध है किंतु मुस्लिम विधि में उपर्युक्त अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन होने पर भी विवाह शून्य नहीं होता है और विशेष रूप से हिंदी भाषी राज्य उत्तर प्रदेश में इसका खुला उल्लंघन होता है क्योंकि शिया स्त्री के मामले में वयस्कता की आयु मासिक धर्म के साथ साथ शुरू हो जाती है और प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में पूर्वधारणा यह होती है कि मासिक धर्म 9 और 10 साल के उम्र में शुरू हो जाता है इसलिए यहाँ संविदा के नियम स्वतंत्र इच्छा व सहमति का उल्लंघन होता है क्योंकि 9 या 10 साल की लड़की स्वतंत्र इच्छा व सहमति नहीं रख सकती इसलिए यहाँ पिता की अनुमति से उसका विवाह होता है और इसे मान्य बनाने के लिए वयस्कता का विकल्प रखा गया है किंतु यहाँ भी मुस्लिम महिला के साथ भेदभाव रखा गया है।

मुल्ला, आप सिट 14वाँ संस्करण 1955-च 117 में मुल्ला का यह मत है कि वयस्कता का विकल्प यदि स्त्री द्वारा यौवनावस्था प्राप्त करते ही तुरंत अथवा शादी का ज्ञान न हो सकने की दशा में शादी की सूचना मिलते ही प्रयोग न किया गया तब यह अधिकार समाप्त हो जाता है लेकिन पुरुष के लिए यह अधिकार तब तक रहता है जब तक कि वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विवाह का अनुसमर्थन नहीं कर देता है। उदाहरण के लिए संभोग द्वारा या मेहर का भुगतान करके धर्म में भिन्नता को लेकर भी मुस्लिम महिला भेदभाव की शिकार है, वह किसी ऐसे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती जो मुसलमान न हो, चाहे वह किताबी हो या नहीं, दैवी ग्रंथ पर आधारित धर्म के अनुयायी पुरुष को 'किताबी' और स्त्री को 'किताबिया' कहते हैं जबकि सुन्नी मुसलमान पुरुष गैर मुस्लिम स्त्री से यदि वह किताबिया अर्थात् ईसाई या यहूदी हो विवाह कर सकता है।

वर्तमान में सर्वाधिक विवाद का विषय है तीन तलाक़ का मुद्दा। तीन तलाक़ कहने का अधिकार मुस्लिम विधि में पुरुष को ही है और मुस्लिम विवाह संविदा है ये तो इन विधिवेत्ताओं की राय से व न्यायालयों के निर्णयों से स्पष्ट हो चुका है पर मज़ाक यहाँ

ये है कि यहाँ बराबरी की बात कहकर भी बराबरी कहाँ दिखाई गई है? मुस्लिम विधि में जब निकाह के वक़्त प्रस्ताव व स्वीकृति को महत्त्व दिया गया तो तलाक़ के समय केवल मर्द को ही तलाक़ कहने का अधिकार क्यों दिया गया। जब संविदा करने का अधिकार दोनों का है तो तोड़ने का अधिकार भी तो दोनों को ही मिलना चाहिए था लेकिन इनका तलाक़ के संबंध में क़ानून महिला व पुरुष में भेद करता है और पुरुषों को अधिकार ज़्यादा देता है। तीन तलाक़ जिस क़ानून के अंतर्गत दिया जाता है वह है -- तलाक़-उल-बिद्दत तलाक़। उल-बिद्दत को तलाक़ उल-बैन के नाम से भी जाना जाता है। यह तलाक़ का निंदित या पापमय रूप है। विधि की कठोरता से बचने के लिए तलाक़ की यह अनियमित रीति ओमेदिया लोगों ने हिज्रा की दूसरी शताब्दी में जारी की थी। शाफ़ई और हनफ़ी विधियाँ तलाक़ उल-बिद्दत को मान्यता देती हैं यद्यपि वे उसे पापमय समझते हैं। शिया और मलिकी विधियाँ तलाक़ के इस रूप को मान्यता ही नहीं देती। तलाक़ की यह रीति नीचे लिखी बातों की अपेक्षा करती है --

1. एक ही तुहर के दौरान किए गये तीन उच्चारण, चाहे ये उच्चारण एक ही वाक्य में हों। जैसे, मैं तुम्हें तीन बार तलाक़ देता हूँ। अथवा चाहे ये उच्चारण तीन वाक्यों में हों जैसे -- 'मैं तुम्हें तलाक़ देता हूँ, मैं तुम्हें तलाक़ देता हूँ, मैं तुम्हें तलाक़ देता हूँ।'
2. एक ही तुहर के दौरान किया गया एक ही उच्चारण, जिससे रद्द न हो सकने वाला विवाह-विच्छेद का आशय साफ़ प्रकट हो : जैसे, मैं तुम्हें रद्द न हो सकने वाला तलाक़ देता हूँ।'

पति की मृत्यु या तलाक़ होने पर भी सभी प्रयोजनों के लिए मुस्लिम विवाह का तुरंत विच्छेद नहीं हो जाता, विच्छेद हो जाने पर भी वह कुछ प्रयोजनों के लिए इद्दत की अवधि तक प्रभावी रहता है। 'इद्दत' वह अवधि है जिसमें जिस स्त्री के विवाह का पति की मृत्यु या तलाक़ द्वारा विच्छेद हो गया हो, उसे एकांत में रहना और दूसरे पुरुष से विवाह न करना अनिवार्य है। मुस्लिम विधि में जब कोई विवाह विवाह-विच्छेद या पति की मृत्यु के कारण विघटित हो जाता है तो स्त्री कुछ समय तक पुनः विवाह नहीं कर सकती है, इस निश्चित समय को 'इद्दत' कहा जाता है। इद्दत का उद्देश्य यह निश्चित करना होता है कि क्या स्त्री पति से गर्भवती है अथवा नहीं, जिससे कि मृत्यु अथवा विवाह-विच्छेद के पश्चात् उत्पन्न हुई संतान की पैतृकता में भ्रम न पैदा हो, साथ ही तलाक़ के मामले में इद्दत अवधि (क़रीब तीन महीने) के बाद रख-रखाव का शुल्क उसके माता-पिता के पास वापस चला जाता है। लेकिन अगर महिला के बच्चे उसका सपोर्ट करने की स्थिति में हैं तो ज़िम्मेदारी उन पर आ जाती है।

पति की मृत्यु के मामले में विधवा को (अगर बच्चे हैं) एक आठवाँ हिस्सा मिलेगा। बच्चे नहीं हैं तो एक चौथाई हिस्सा मिलेगा। वहीं अगर मृतक की एक से ज़्यादा पत्नियाँ हैं तो हिस्सा एक-सोलहवें तक घट सकता है। पत्नी के रूप एक मुस्लिम महिला अपने पति से निर्वाह व्यय प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है। शादी कायम रहते हुए चाहे मेहर के संबंध में कोई अनुबंध न भी किया गया हो उसे अपने पति के साथ रहने का अधिकार होता है। इस प्रकार एक मुस्लिम महिला के पत्नी के रूप में कई अधिकार हैं --

1. पति के सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए उससे निर्वाह व्यय की प्राप्ति, यदि पत्नी आज्ञाकारिणी और वयस्क है तो उसे इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता, भले ही वह अपनी संपत्ति से अपना निर्वाह कर सकती हो। यह अधिकार उसे तब तक प्राप्त रहता है जब तक कि विवाह-विच्छेद नहीं होता है।
2. एक से अधिक पत्नियाँ होने पर सभी से समान व्यवहार तथा पृथक् शयन कक्ष।
3. मेहर प्राप्त करने और भुगतान न किए जाने पर समागम से इनकार।
4. वर्ष में कम-से-कम एक बार अपने निषिद्ध आस्तियों के भीतर के संबंधियों के यहाँ जाने और उनके उसके यहाँ आने और उसके माता-पिता और पूर्व पति से उत्पन्न बच्चों के उचित अंतराल से उसके यहाँ आने का अधिकार।
5. यदि पति उसी मकान में कोई रखैल उसके साथ रखे तो पति के साथ रहने से इनकार करने और ऐसे इनकार के होते हुए निर्वाह की अभ्यर्थना करने का अधिकार।
6. वह एक कक्ष के उपयोग के लिए, जिसमें वह अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को आने न दे, अधिकृत हो जाती है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि ये अधिकार पत्नी को निर्बाध रूप से प्राप्त हों, इन्हें पाने के लिए पत्नी के रूप में उन्हें कुछ कर्त्तव्यों को भी निभाना होगा जो कि निम्न हैं --

1. उसके लिए दांपत्य निष्ठा का दृढ़ता से पालन आवश्यक है।
2. वह अपने स्वास्थ्य, शिष्टता और स्थान का ध्यान रखते हुए पति को अपने साथ समागम करने देने के लिए बाध्य है।
3. वह पति की उचित आज्ञाओं का पालन करने के लिए बाध्य है।
4. पक्षकारों की सामाजिक स्थिति और स्थानीय प्रथा के अनुसार पर्दा करना पत्नी का कर्त्तव्य है।
5. वह मृत्यु या विवाह-विच्छेद होने पर इद्दत का पालन करने के लिए बाध्य है।

मुस्लिम विधि का 'तीन तलाक़' मुस्लिम महिलाओं के लिए जीवन में एक नश्तर के समान है, नाग के काटने के समान है जिसका काटा कभी पानी नहीं माँगता, साइनाइड जहर के समान है जिसका क्या स्वाद है उसे खाने वाला व्यक्ति काग़ज़-पेंसिल लेकर लिखने

की इच्छा लेकर उसे चाहकर भी नहीं लिख पाता, ऐसा विनाशकारी प्रभाव रखने वाला शब्द 'तीन तलाक़' मुस्लिम महिलाओं के जीवन की त्रासदी है। अच्छी ख़ासी चलती शादी-शुदा ज़िंदगी एक क्षण में तहस-नहस हो जाती है। पति का तलाक़-तलाक़-तलाक़ शब्द का उच्चारण पत्नी के सुखी ख़ुशहाल जीवन का अंत कर जाता है और कहीं कोई हाथ मदद को नहीं आ पाता क्योंकि मुस्लिम शरीयत क़ानून पति को ये इजाज़त देता है। क़ानून का जो मजाक मुस्लिम शरीयत क़ानून में उड़ाया गया है ऐसा किसी भी अन्य धर्म में नज़र नहीं आता। बराबरी का अधिकार देने की बात कर मुस्लिम धर्म में महिलाओं को निम्नतम स्तर पर उतार दिया गया है। मुस्लिम महिलाओं को मिले हुए मेहर के अधिकार की चर्चा उनके पुरुषों की बराबरी के रूप में की जाती है फिर निकाह के समय 'कुबूल है' भी महिलाओं की ताक़त के रूप में वर्णित किया जाता है किंतु यदि हम गहनता से इन दोनों पहलुओं का विश्लेषण करें तो ये दोनों ही इसे संविदा का रूप दे देते हैं। और मुस्लिम विधि के बड़े बड़े जानकार इस धर्म की विवाह संस्था को संविदा का ही नाम देते हैं।

आमतौर पर इस सबको ही लेकर लोगों की धारणा यह है कि इस्लाम में महिलाओं को अत्यधिक अत्याचार और शोषण सहना पड़ता है -- लेकिन क्या हक़ीक़त में ऐसा है? क्या लाखों की तादाद में मुसलमान इतने दमनकारी हैं या फिर ये ग़लत धारणाएँ पक्षपाती मीडिया ने पैदा की हैं? इस्लाम को लेकर यह ग़लतफ़हमी है और फैलाई जाती है कि इस्लाम में औरत को कमतर समझा जाता है। सच्चाई इसके उलट है। हम इस्लाम का अध्ययन करें तो पता चलता है कि इस्लाम ने महिला को चौदह सौ साल पहले वह मुकाम दिया है जो आज के क़ानून दाँ भी उसे नहीं दे पाए। इस्लाम लोकतांत्रिक मज़हब है और इसमें औरतों को बराबरी के जितने अधिकार दिए गए हैं उतने किसी भी धर्म में नहीं हैं। इस्लाम के अलावा कोई ऐसा दीन, धर्म या जीवन दर्शन नहीं है जिसने औरत को उसका पूरा जायज़ अधिकार और न्याय दिया हो और उसके नारीत्व की सुरक्षा की हो।

1930 में, एनी बेसेंट ने कहा, ''ईसाई इंग्लैंड में संपत्ति में महिला के अधिकार को केवल बीस वर्ष पहले ही मान्यता दी गई है, जबकि इस्लाम में हमेशा से इस अधिकार को दिया गया है। यह कहना बेहद ग़लत है कि इस्लाम उपदेश देता है कि महिलाओं में कोई आत्मा नहीं है।'' (जीवन और मोहम्मद की शिक्षाएँ, 1932)

डॉक्टर लिसा (अमेरिकी नव मुस्लिम महिला) मैंने तो जिस धर्म (इस्लाम) को स्वीकार किया है वह स्त्री को पुरुष से अधिक अधिकार देता है।

उनके एक व्याख्यान के अंत में उनसे सवाल किया गया कि --

''आप ने एक ऐसा धर्म क्यों स्वीकार किया जो औरत को मर्द से कम अधिकार देता है?''

उन्होंने जवाब में कहा कि ''मैंने तो जिस धर्म को स्वीकार किया है वह स्त्री को पुरुष से अधिक अधिकार देता है'', पूछने वाले ने पूछा वह कैसे?

डॉक्टर साहिबा ने कहा ''सिर्फ़ दो उदाहरणों से समझ लीजिए''।

पहला यह कि ''इस्लाम ने मुझे चिंता आजीविका से मुक्त रखा है यह मेरे पति की ज़िम्मेदारी है कि वह मेरे सारे ख़र्च पूरे करे'', चिंता आजीविका से बड़ा कोई सांसारिक बोझ नहीं और अल्लाह ने हम महिलाओं को इससे पूरी तरह से मुक्त रखा है, शादी से पहले यह हमारे पिता की ज़िम्मेदारी है और शादी के बाद हमारे पति की।

दूसरा उदाहरण यह है कि ''अगर मेरी संपत्ति में निवेश या संपत्ति आदि हो तो इस्लाम कहता है कि यह सिर्फ़ तुम्हारा है तुम्हारे पति का इसमें कोई हिस्सा नहीं है।''

इस्लाम में औरतों को निम्न अधिकार भी दिए गए हैं --

1. **इस्लाम में औरतों को संपत्ति का अधिकार :** औरत को बेटी के रूप में पिता की जायदाद और बीवी के रूप में पति की जायदाद का हिस्सेदार बनाया गया। यानी उसे साढ़े चौदह सौ साल पहले ही संपत्ति में अधिकार दे दिया गया।
2. **औरतों को अपनी पहचान बनाए रखने का सम्मान :** इस्लाम ने औरतों को अपनी पहचान बनाए रखने का भी सम्मान किया है इसलिए जब अन्य महजब में शादी के बाद नाम बदलने की इजाज़त है, इस्लाम में औरत शादी के बाद भी अपना नाम बरकरार रख सकती है। उन्होंने कहा कि अगर इसके बाद भी लोग सोचते हैं कि हम लोग अपनी औरतों को दबा कर रखते हैं तो हमें इस पर सोचना चाहिए।
3. **तलाक़शुदा का विवाह :** समाज मे हर व्यक्ति को बिना शादी के नहीं रहना चाहिए। अगर तलाक़ हो गया है तो फौरन अच्छे साथी चुन कर सुखमय जीवन बिताना चाहिए। तलाक़शुदा और विधवा महिलाओं को सम्मान देकर पुरुषों को उनसे विवाह करने के लिए प्रेरित किया है, सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम हजरत मुहम्मद ने ऐसी तलाक़शुदा और विधवा महिलाओं से खुद विवाह करके अपने मानने वालों को दिखाया कि देखो मैं कर रहा हूँ। तुम भी करो, मैं सम्मान और हक़ दे रहा हूँ तुम भी दो। मुसलमानों के लिए विधवा और तलाक़शुदा औरतों से विवाह करना हुजूर सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम की एक सुन्नत पूरी करना है, जो बहुत पुण्य का काम है।
4. **वर चुनने का अधिकार :** वर चुनने के मामले में इस्लाम ने स्त्री को यह अधिकार दिया है कि वह किसी के विवाह प्रस्ताव को स्वेच्छा से स्वीकार या अस्वीकार कर

सकती है। इस्लामी क़ानून के अनुसार किसी स्त्री का विवाह उसकी स्वीकृति के बिना या उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध नहीं किया जा सकता। बीवी के रूप में भी इस्लाम औरत को इज़्ज़त और अच्छा ओहदा देता है। कोई पुरुष कितना अच्छा है, इसका मापदंड इस्लाम ने उसकी पत्नी को बना दिया है। इस्लाम कहता है अच्छा पुरुष वही है जो अपनी पत्नी के लिए अच्छा है। यानी इंसान के अच्छे होने का मापदंड उसकी हमसफ़र है।

5. **स्वतंत्र बिजनेस करने का अधिकार :** इस्लाम ने महिलाओं को बहुत से अधिकार दिए हैं। जिनमें प्रमुख हैं, जन्म से लेकर जवानी तक अच्छी परवरिश का हक़। शिक्षा और प्रशिक्षण का अधिकार, शादी ब्याह अपनी व्यक्तिगत सहमति से करने का अधिकार और पति के साथ साझेदारी में या निजी व्यवसाय करने का अधिकार, नौकरी करने का आधिकार, बच्चे जब तक जवान नहीं हो जाते (विशेषकर लड़कियाँ) और किसी वजह से पति और पुत्र की संपत्ति में वारिस होने का अधिकार। इसलिए वे खेती, व्यापार, उद्योग या नौकरी करके आमदनी कर सकती हैं और इस तरह होने वाली आय पर सिर्फ़ और सिर्फ़ उस औरत का ही अधिकार होगा।

6 **माता के रूप में :** अगर बच्चे अपने पैरों पर खड़े हैं तो मुस्लिम माता को उनसे विरासत पाने का हक़ है। अगर बेटे की मौत हो जाए और उसके बच्चे भी हैं तो मृतक की माँ को उसकी संपत्ति का एक-छठवाँ हिस्सा मिलेगा। लेकिन अगर पोते-पोतियाँ नहीं हैं तो महिला को एक-तिहाई हिस्सा मिलेगा।

7. **मेहर :** यह वह पैसा या संपत्ति होती है, जो शादी के वक़्त पत्नी अपने पति से पाने की हक़दार होती है। मेहर दो तरह की होती हैं -- तुरंत और देरी से। पहले मामले में पत्नी को शादी के तुरंत बाद पैसा दे दिया जाता है जबकि दूसरे में शादी ख़त्म होने के बाद मिलता है, चाहे वह तलाक़ के कारण हो या पति की मौत की वजह से।

8. **वसीयत :** एक मुस्लिम पुरुष या औरत कुल संपत्ति का एक तिहाई हिस्सा ही वसीयत के जरिए दे सकता/सकती है। अगर संपत्ति में कोई वारिस नहीं है तो पत्नी को वसीयत के जरिए ज़्यादा राशि मिल सकती है।

इसके साथ साथ क़ानून भी अब इनकी स्थिति को लेकर जागरूक है और इनके लिए लाभदायक कुछ प्रावधान कर इनकी वित्तीय व पारिवारिक स्थिति सुदृढ़ करने के उपाय किए जा रहे हैं --

1. वयस्कता के विकल्प के संबंध में आधुनिक विधि : मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 ने वयस्कता के विकल्प की पुरानी विधि को काफ़ी सीमा तक

बदल दिया है, इससे पहले पिता या पितामह द्वारा संविदाकृत विवाह, अति विशिष्ट परिस्थितियों के सिवा, वयस्कता प्राप्त कर लेने पर अवयस्क द्वारा अस्वीकृत नहीं किया जा सकता था परंतु अब यह मुस्लिम विधि के अंतर्गत विवाहिता स्त्री के विषय में सन् 1939 के उक्त अधिनियम की धारा 27 के द्वारा निरस्त कर दी गई है, धारा 27 का कथन इस प्रकार है -- ''मुस्लिम विधि के अंतर्गत विवाहिता कोई स्त्री विवाह-विच्छेद की डिक्री इस आधार पर प्राप्त करने के लिए अधिकृत होगी कि वह अपने पिता या अभिभावक द्वारा पंद्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पहले विवाह में दिए जाने पर अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले उसने विवाह को अस्वीकार कर दिया, बशर्ते कि विवाह पूर्णावस्था को प्राप्त न हुआ हो।

2. मशहूर शाह बानो केस में सुप्रीम कोर्ट ने तलाक़ के मामले में कहा था कि मुस्लिम महिला क़ानून, 1986 (तलाक़ों के अधिकारों का संरक्षण) के सेक्शन 3 (1एचए) के मुताबिक अलग होने के बाद भी अपनी पूर्व पत्नी की देखभाल करने की ज़िम्मेदारी पति की है। यह अवधि इद्दत के भी परे है, क्योंकि महिला अपनी संपत्ति और सामान पर नियंत्रण रखती है।

इस प्रकार मुस्लिम विधि में महिलाओं की स्थिति उतनी भी बुरी नहीं है जितनी दिखाई जा रही है और जहाँ बुरी स्थिति है वहाँ सुधार करने की उच्चतम न्यायलय व हमारी लोकतांत्रिक सरकार द्वारा कोशिशें की जा रही हैं। इसलिए आशा ही नहीं, हमें विश्वास है कि मुस्लिम महिलाओं की ज़िंदगी में भी उन्नति का सूर्य जल्द ही उदित होगा और हाँ, यह भी ज़रूरी है कि इसके लिए वे स्वयं भी प्रयास करें क्योंकि ख़ुद को शिक्षा के उजाले से जोड़कर अपनी ज़िंदगी को वे बहुत जल्द 21वीं सदी में जाने लायक बना पाएँगी और फिर सभी जानते हैं कि ख़ुदा उसी की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है।

❑

डॉ. उषा देव

क्या कहूँ आज

"आपके मित्र डॉ. मुकेश यहाँ अपने पुराने घर में कल शिफ़्ट हो गए हैं। बचपन के दोस्त हैं। मिलने नहीं जाओगे?" मेरी पत्नी ने सूचना के साथ-साथ प्रश्न भी कर डाला।

"तुम्हें यह शुभ समाचार किसने दिया?"

"लो कर लो बात; पाँच दिन पहले ही वे दो आदमियों से घर की सफ़ाई करवाने आए थे। तब उनके पड़ोसी ने जिज्ञासावश पूछा, "डॉ. साहब, मकान किराए पर देने का इरादा है क्या?"

"नहीं, ख़ुद जीवन के शेष दिन यहीं बिताना चाहता हूँ। शायद बचपन के ख़ुशगवार दिनों की पुनरावृत्ति हो जाए।"

आज मंदिर जा रही थी तो स्वयं उनकी पत्नी डॉ. सुनीता जी से भेंट हुई थी। वे किसी बरतन और सफ़ाई करने वाली के विषय में पूछ रही थीं। आरती का समय हो गया था सो, राजी-ख़ुशी के बाद 'कामवाली का प्रबंध कर दूँगी' -- ऐसा मैंने आश्वासन दे दिया था।" साथ ही शारदा ने सुझाव दे डाला कि "अभी तो फ़ोन पर ही वापिस आने पर शुभ मंगलमय कामना व्यक्त कर दीजिए और फिर मिलने का समय निश्चित कर उनसे मिलने चले जाना।"

वास्तव में, मुकेश और मैं एक ही स्कूल में पढ़ते थे। हम दोनों के परिवारों में भी काफ़ी घनिष्ठता थी। कारण, दोनों ही एक स्तर के थे। देश विभाजन की त्रासदी को सहते, बचते-बचाते यहाँ आकर बस गए थे। हम दोनों के बड़े भाइयों ने बी.ए. के बाद टाईप, शार्टहैंड सीख कर बैंकों में नौकरी पा ली थी। पर हमारे विषय में उनकी एक ही चाहना थी कि हम साइंस पढ़े तथा डॉक्टर, इंजीनियर बने। हम दोनों ने बी.एस.सी. में दाख़िला ले लिया था। पर आज की तरह इंजीनियरिंग या डॉक्टरी के लिए प्रवेश-परीक्षा न होती थी। बस अंकों एवं रुच्यानुसार दाख़िला मिल जाता था। मैंने इंजीनियरिंग की और मुकेश

ने डॉक्टरी।

एक ही मुहल्ले में रहते हुए हम दोनों की अक्सर ही मुलाक़ात होती रहती थी; कभी तो बाज़ार में या फिर रविवार को रोशनआरा बाग में सुबह की सैर करते हुए। अति व्यस्तता के चलते भी कुशलक्षेम का आदान-प्रदान प्रायः हो जाता था।

मेरी शादी स्कूल टीचर शारदा से और पाँच-छः महीने के बाद मुकेश की स्त्री-रोग विशेषज्ञ डॉ. सुनीता से संपन्न हो गई। हम लोग पारिवारिक सुख-दुःख में सदैव साथ बने रहते थे।

मुकेश की माताश्री वीना जी अपने माता-पिता की इकलौती संतान थीं। लुधियाना में पैत्तृक कृषि योग्य पंद्रह एकड़ ज़मीन और दो मंज़िला घर था। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् वीना जी को जड़-जायदाद मिल गई थी। इधर मुकेश के पिता जी की भी एक एक्सीडेंट में मृत्यु हो गई। वीना जी ने बेटों से सलाह-मश्विरा कर आधी-आधी ज़मीन बेटों के नाम कर दीं। बड़े बेटे रोहित के नाम लुधियाना का घर और यहाँ दिल्ली का घर मुकेश के नाम कर दिया। रोहित सपरिवार लुधियाना में अपनी ट्रांस्फर करा कर रहने चला गया।

वीना जी ने अपना शेष जीवन मुकेश के साथ व्यतीत करने का फैसला इस विचार को मद्देनज़र रख कर किया, ''ये पति-पत्नी अपने डॉक्टरी व्यवसाय में अत्यंत व्यस्त रहते हैं। कम से कम मेरे यहाँ रहने से इनके बच्चों की ठीक देखभाल हो जाएगी।''

मुकेश के दो बेटे जयंत और मोहित और मेरी एक बेटी मुस्कान हुई। बेटी ने अभी बी.ए. किया ही था कि शारदा के एक दूर के रिश्तेदार जो कनाडा में स्थायी रूप से जा बसे थे, उसका रिश्ता अपने डॉक्टर बेटे मयंक के लिए माँग लिया। परिवार जाना-पहचाना था। हमने मयंक से मिलने की इच्छा ज़ाहिर की तो वे सपरिवार एक संबंधी के यहाँ आकर ठहरे। विचार-विनिमय हुआ। मयंक और मुस्कान को दो-तीन बार परस्पर बातचीत के लिए सुअवसर भी दिया गया। पंद्रह दिन बाद कोर्ट मैरिज हो गई। एक महीने बाद मयंक अपने परिवार के साथ वापिस चला गया। वीज़ा लगने के बाद मुस्कान भी कनाडा चली गई। वह वहाँ ख़ुश है।

इधर मुकेश के बड़े बेटे जयंत ने मौलाना आज़ाद मैडिकल कॉलेज में एम.बी.बी.ए. और एम.डी. कर रेलवे विभाग में नियुक्ति पा ली थी। उसकी तब्दीली अलग-अलग शहरों में होती रहती थी। जब कभी शादी की बात उठती तो उसका विनम्र पर दृढ़ उत्तर यही होता, ''कोई ठीक-ठीक जीवन-साथी मिल जाएगा तो आपको सूचित कर दूँगा।''

मोहित माँ-बाप की व्यस्त जीवन-पद्धति से संतुष्ट न था। दसवीं के बाद विषय-चयन की पूरी-पूरी छूट उन्होंने दे रखी थी। वह कॉमर्स लेने के लिए अड़ गया। ख़ैर, सीनियर

सैकेंडरी के बाद एक नामी-गिरामी कॉलेज में दाख़िला ले लिया।

मुकेश ने लुधियाना में अपने हिस्से की ज़मीन बेच कर ग्रेटर कैलाश में 500 गज़ पर निर्मित एवं फर्निशड् कोठी ख़रीद ली थी। बस, समस्या एक ही थी कि वीना जी इस वृद्धावस्था में नई जगह चल कर रहने को क़तई तैयार न थी।। वह भी ग़लत कहाँ थीं? इस मुहल्ले में रहते हुए उन्हें लगभग 50 साल हो गए थे। आसपास की हम उम्र सखियाँ दोपहर या कभी-कभार शाम तक मिल बैठ कर कुछ पुरानी यादें ताज़ा करतीं तो कोई पोता-पोती के लिए स्वेटर बुनतीं तो कोई बैठे-बैठे झुर्रियाँ पड़े हाथ के अँगूठे और तर्जनी उँगली से सेवियाँ बनातीं। वीना जी तो रह-रह कर अपनी साथीनियों से कह उठतीं, ''भई, इन लोगों के काम पर चले जाने पर यह सौ गज़ का घर खाली-खाली लगता है तो फिर उस पाँच-सौ गज़ की कोठी में अकेले समय काटना तो मुझे पागल कर देगा। यहाँ तुम्हारे साथ बैठ कर कुछ न कुछ काम या बातचीत करते हुए समय कब और कैसे बीत जाता है -- कुछ पता ही नहीं चलता। वहाँ तो किसी को यह जानने की फ़ुरसत भी न होती होगी कि आसपास में कौन रहता है; ज़िंदा भी है या मर गया?'' सब गर्दन हिला कर उनके कथन का अनुमोदन कर उठतीं।

इधर मोहित की बी.कॉम परीक्षा ख़त्म हुई और उधर दो दिन के ज़्वर से ही वीना जी परलोक सिधार गईं। दो महीने बीतते-ही-बीतते मुकेश ग्रेटर कैलाश में शिफ़्ट हो गया। कई दिन तक कबाड़ी वाले फ़र्नीचर, गद्दे, सिलाई मशीन, बरतन-भांडे, फ़्रिज़ आदि को मिट्टी के भाव ढो कर ले जाते रहे। पता नहीं, मकान के प्रति लगाव था या कि कोई अन्य कारण; उस पर ताला लगा दिया गया। कई दिन तक मुहल्ले में रहने वाले प्रॉपर्टी डीलर्स उसके भाव-ताव के अनुमान लगाते रहे। यही नहीं, फ़ोन पर मुकेश से बातचीत भी कर उठते पर हर बार एक ही उत्तर मिलता, ''अभी इस विषय पर कुछ सोचा ही नहीं है।''

समय-प्रवाह अपनी तीव्र गति से भागता चला जाता रहा। आज बारह साल बाद उस घर की साज़-सफ़ाई करवा पुनः सपत्नी डॉ. मुकेश आकर रहने लगे हैं -- ऐसा शारदा ने बताया।

फ़ोन पर राज़ी-ख़ुशी एवं पारिवारिक कुशल-क्षेमता का आदान-प्रदान हुआ। अकस्मात् मैं पूछ उठा, ''क्या आपको रविवार को कुछ विशेष काम तो नहीं है? मैं मिलने आना-चाहता हूँ।''

''भई, राघव, अब तो फ़ुरसत ही फ़ुरसत है। हम दोनों ने अपने-अपने हॉस्पिटल्स से ऐच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली है?''

''यह क्या कह रहे हो?''

''राघव, यह एक लंबी दास्तान है। मिलने पर ही सब कुछ स्पष्ट कर पाऊँगा। वास्तव

में, तुम मेरे अभिन्न मित्र ही नहीं हो वरन् राज़-ए-दिल को समझने में तुम ही समर्थ हो सकते हो -- ऐसा मेरा विश्वास है।''

मुकेश के उदासी भरे इन शब्दों ने मन को इतना उद्वेलित कर दिया कि अगले पल ही मैं पूछा उठा, ''क्या अभी आ सकता हूँ''

उस समय ग्यारह बजे थे और दूसरा शनिवार होने के कारण मेरी छुट्टी थी।

''क्यों नहीं?''

''ठीक है।''

शारदा से बस इतना ही कहा, ''शारदा, मैं कपड़े बदल कर मुकेश से मिलने जा रहा हूँ। सुबह नाश्ता काफ़ी भारी-भरकम हो गया है। दोपहर के भोजन की चिंता न करना। जानती हो दो बचपन के दोस्तों की वर्षों बाद मुलाक़ात होने जा रही है।''

''अच्छा, ठीक है।''

मैं तुरंत तैयार हो मुकेश के घर जा पहुँचा। ऐसा लगा कि वह पहले ही बैठक में बैठा हुआ मानो मेरा ही इंतज़ार कर रहा था।

उसने उठकर हाथ मिलाते-मिलाते ही मुझे गले लगा लिया। बचपन की निच्छल दोस्ती वर्षों के अंतराल को पार कर अपना मूर्त रूप धारण उठी। हम दोनों एक ही सोफ़े पर आ बैठे थे। इतने में सुनीता ने बैठक में प्रवेश किया। नमस्कार कर वे मेरे, शारदा और मुस्कान के विषय में तरह-तरह के प्रश्न कर उठीं।

''मयंक कैसा है?'', ''कनाडा में उसकी प्रेक्टिस अच्छी चल रही है? मुस्कान के कितने बच्चे हैं?'', 'वह वहाँ ख़ुश तो है' विवाह के बाद इंडिया सपरिवार घूमने कितनी बार आई है'' -- इत्यादि-इत्यादि।

मैं बड़े इत्मीनान से उनके प्रश्नों का उत्तर देता जा रहा था। अकस्मात् वे बोलीं, अरे, मैं भी कैसी मूर्ख हूँ आपको न पानी, न ही चाय के लिए पूछा। अच्छा, अभी पहले आप दोनों के लिए पानी लाती हूँ।'' मेरे कुछ कहने के पहले वे बैठक से रसोई की ओर मुड़ गईं।

''हाँ मुकेश, तुम दोनों ने ही एक साथ ऐच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली है -- यह बात मुझे कुछ अटपटी-सी लग रही है। डॉक्टरी पेशा तो सेवा-समर्पण का होता है। चाहे सरकारी हॉस्पिटल में काम करो या फिर निजी। आप लोगों का स्वास्थ्य तो ठीक-ठीक है न? ऐसी क्या मज़बूरी आन पड़ी कि इतना बड़ा निर्णय आप लोगों ने ले लिया?''

''राघव, तुमने तो प्रश्नों की झड़ी ही लगा दी। मैं तो ख़ुद-ब-ख़ुद अपनी जीवन-गाथा के एक-एक अध्याय को तुम्हारे सम्मुख पेश करना चाह रहा हूँ। हो सकता है, उन्हें बाँच, समझ कर तुम भी हमारे निर्णय के समर्थ बन जाओ। इस विषय पर जिज्ञासा तो प्रत्येक

परिचित व्यक्ति को है; पर हमारी स्थिति को समझने की क्षमता उनमें से शायद ही किसी की हो।''

''ठीक है, तुम सविस्तार कहो।''

तभी ट्रे में पानी के तीन गिलास ले कर सुनीता जी आ गई। उन्होंने ट्रे को मेज़ पर रख कर हम दोनों को एक-एक गिलास पकड़ा दिया और स्वयं सामने वाले सोफ़े पर बैठ गईं।

''कहो कैसे क्या कहूँ? और कहाँ से शुरू करूँ अपनी दास्तान को? अच्छा, तो सुनो। हम यहाँ से ग्रेटर कैलाश रहने चले गए। मोहित ने बी.कॉम. अच्छे अंकों से उत्तीर्ण किया था। आगे क्या करने का विचार है -- यह प्रश्न उससे जब कभी पूछते तो वह झल्ला उठता और कहता, ''दोनों ख़ूब कमा रहे हो। रहने को दो मंज़िला कोठी है। मैं आराम का जीवन जीना चाहता हूँ। मुझे रात-दिन मारा-मारी करना क़तई पसंद नहीं है।''

उसकी ये बातें मुझे अत्यंत पीड़ित कर उठीं। पहले तो मैंने समझा कि वह मज़ाक कर रहा है। पर जब दाख़िले की तारीख़ें निकलती जा रही थीं तब एक दिन मैंने कहा, ''चलो, आगे कोई कोर्स करने का मन ही बना लो। ये बचकानी बातें छोड़ो। जीवन माँ-बाप के पैसे के सहारे नहीं निकला करता।''

''क्यों दादी जी की ज़मीन बेचकर ही तो इतना बड़ा घर आप लोगों ने ख़रीदा है। मैं यहीं रहूँगा। अभी तो आप दोनों की कई साल की नौकरी है। आगे चल कर ऊपर की मंज़िल किराए पर उठा दूँगा। मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि आप लोग मेरे परिवार के पालन-पोषण में भी कोई कमी न होने देंगे। आप लोगों को सचेत करना चाहता हूँ कि आज के बाद आप मेरी पढ़ाई-लिखाई की बात नहीं करेंगे। समझ आ गई कि नहीं?''

सुनीता उसकी बक़वास को सुन कह उठी, ''अरे, मानव शरीर मिला है। हर व्यक्ति को ईश्वर ने हाथ कमाने और कुछ अच्छा करने के लिए दिमाग़ दिया है। आज तक मैं जब कभी और जितने रुपये माँगते थे; दे दिया करती थी पर आज से घर में जो खाना बना करेगा बस वही पाओगे। हमसे कुछ ज़्यादा की उम्मीद मत करना।''

''देख लूँगा। तुम लोग अपने ही बनाए गए इस नियम को कितने दिन चला पाते हो? -- यह कह कर वह घर से बाहर चला गया।

मेरे होश तो इस विचार पर गुम हो गए कि कहीं हमारी सख़्ती ही हमें महँगी न पड़ जाए। कारण, ये सुख-सुविधा-भोगी बच्चे मनमानी पर उतर आते हैं और आत्महत्या तक की धमकी देने से पीछे नहीं हटते। सो, सुनीता से मैंने कहा, ''देखो, शायद कुछ समय बाद वह ख़ुद ही कोई कोर्स करने और कमाने की सोच कर उठे। सो, थोड़ा हाथ खींचकर ही सही उसकी ज़रूरतों को ध्यान में रखकर रुपये दे दिया करना।''

मैं नहीं जानता था कि वह सुनीता की लल्लो-चप्पो कर अनाप-शनाप ख़र्चा पाया करता था। पिछले पाँच-छः महीनों में जब कभी मैं अनुमानित समय से पूर्व घर लौटता था तो पता चलता कि वह अपने कमरे के पीछे के दरवाज़े को पहले खोलता और बाद में मुझे। एक दिन अकस्मात् ही इस बात के रहस्य को जानने की इच्छा हो आई। सो, ''तबीयत ठीक नहीं है'' -- ऐसा कह मैं हॉस्पिटल से जल्दी लौट आया। कॉल-बैल कर लगभग दौड़ते हुए उसके कमरे के पीछे के दरवाज़े, जो गली में खुलता था, की ओर पहुँचा। तभी एक सुंदर, नाज़ुक लड़के को निकलते हुए देखा। क़दम बढ़ा उससे पूछा, ''भई, तुम कौन हो?''

''अंकल, मैं मोहित का यार हूँ।''

''साथ पढ़ते थे?''

''नहीं, मैं बस ऐसे लोगों के काम आता हूँ।''

''ऐसे कैसे लोगों के?''

''मोहित से पूछना। वह हर बार की मीटिंग के लिए मुझे कुछ रुपए देते हैं।''

''ठीक है जाओ।''

मैं जल्दी वापिस पूर्व स्थान पर आ पहुँचा। मोहित बोला, ''मैं तो दरवाज़ा खोल कर कब से खड़ा हूँ। इधर-उधर आपको देख रहा था।''

''हाँ, मैं गली में तुम्हारे यार से मिल कर आ रहा हूँ।''

वह एकदम मेरे सम्मुख खड़ा हो गया और निर्भीकता से उच्च स्वर में बोला, ''यह क्या बदतमीज़ी है। मेरे रिश्तों की खोज़-ख़बर लेते फिरते हो? परिणाम अच्छा न होगा।''

''क्या कर लोगे?''

उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए से अपने कमरे से लाकर मुझे सोफ़े पर बिठा दिया। मेरे कंधों पर दोनों हाथों की जकड़ बनाते हुए कहा, ''हाँ-हाँ, जानना चाहते हो? वह मेरा यार है यार। यार का मतलब समझाना पड़ेगा। वह मेरे लिए 'टूल' का काम करता है। तुम पढ़ाकू व्यस्त लोगों को समझाना पड़ेगा कि 'टूल' भी हम लोग किसे कहते हैं। तो सुनो, मैं अपनी 'सैक्स्युलिटी टेस्ट' करना चाहता हूँ। समझ आई। हम फल-मिठाई चख कर या देखकर लेते हैं तो फिर जीवन के इस क्षेत्र में स्वयं को समझे या जाने बिना कैसे हम पदार्पण करें?''

मैं चीख़ कर कुछ कहना चाहता था पर नहीं कह सका। मन ही मन कहा, ''ओफ़ क्या ज़माना आ गया है? बच्चे इतनी घिनौनी हरक़तों पर उतर आए हैं। यह मानसिक दिवालियापन नहीं तो क्या है? इन्हें न तो इस निकृष्ट विचार या कर्म करते शर्म आती है और न माँ-बाप को इनके कुकृत्य से पहुँचने वाले दुःख का ही ध्यान है। यही नहीं,

ऐसे कुकर्म से एच.आई.वी. होने का तनिक भी न ख़्याल है न ही भय।''

कुछ उच्चारित करना तो दूर; मेरी जीभ तालू से जा चिपकी थी। ऐसा लगा मानो शब्दों का कोश समाप्त प्रायः हो गया है। ओफ़, संतान से सुख की कामना तो न की थी; पर उसके भटकने और बोलने के लहज़े से हुए मानसिक उत्पीड़न से मेरे हृदय की धड़कन इतनी बढ़ गई थी कि क्षण भर को लगा कि आज इसी पल; इसी सोफ़े पर ही मेरे प्राण पखेरू उड़ जाएँगे। पर सच्चाई से अवगत था कि जीने से मरना और भी कठिन होता है। मोहित यह ज़हर उगल कर अपने कमरे में जा बैठा, लेट गया या बाहर चला गया -- मैं नहीं जानता।

हाँ, सोच उठा कि यदि मेरी जगह मेरी माताश्री या पिताश्री होते तो वे क्या करते? शायद दो क़दम आगे बढ़कर या दो-चार थप्पड़ अपने जवान बिगड़ैल पुत्र को जड़ देते या फिर तुरंत धक्के मार-मार कर घर से बाहर कर देते। पर आज की परिभाषा में हम सफल व्यक्ति (ठीक-ठाक पढ़-लिख कर और कमाते हुए भी) उस प्रकार के व्यवहार को क़तई उचित नहीं मानते। दूसरे, आज हम नौकरीपेशा दंपति इस अपराध-बोध से भी ग्रसित हैं कि हम अपनी व्यस्त जीवनशैली के कारण शायद इन्हें ठीक-ठीक संस्कार नहीं दे पाए हैं। तीसरे, यह ईडीयट बॉक्स (टी.वी.), यह फ़िल्मी दुनिया, यह इंटरनेट की अश्लील वेबसाइट्स -- जिसे वे रात-दिन देख रहे हैं -- इन सब ने मिलकर इस विषय को इतना तूल दे रखा है कि इस नई पौध को उसके धीमे मीठे विष से बचा पाना हमारे-तुम्हारे वश की बात नहीं। तो फिर क्या करूँ? क्या सुनीता इसका हल निकाल पाएगी? क्या इस दबंग को मनोरोग-विशेषज्ञ से मिलवाया जाए? -- मैं विचारों-कुविचारों, परिणामों-कुपरिणामों के भँवर-जाल में फँस कर लगभग दो घंटे वहीं सोफ़े पर निढाल धँस गया।

सुनीता ने कॉल-बेल की। मैं धीरे से उठा और सधे क़दमों से जा कर दरवाज़ा खोला ही था कि मेरा चेहरा देखते ही उसने हड़बड़ाहट में पूछा; तबीयत तो ठीक है? घर जल्दी कैसे आ गए?''

''चलो, अंदर चलो; यहीं दरवाज़े पर ही सब जान लेना चाहती हो। पहले थोड़ा आराम कर लो। कुछ ठंडा या ग़र्म पीने की इच्छा हो तो मैं ले आता हूँ'' -- कह कर मैं रसोई की ओर चल दिया। उसने क्या उत्तर दिया, मुझे जानना भी न था। कारण, मैं सद्यः प्राप्त मानसिक आघात से उभर न पाया था। सुनीता को सविस्तार बताने का मतलब था उस जख़्म को और गहरा करना। दूसरे, माँ की ममता बड़े-बड़े आघात सहने की क्षमता रखती भी है और कभी नहीं भी -- ऐसा मेरा अनुभव रहा है। पर इस विषय पर मैं उसे संकेत न दूँ और उसकी राय न जानूँ -- ऐसा भी तो मुमकिन न था। कारण, गृहस्थी-रूपी नाव दोनों खवैयों के चप्पुओं की एक लयबद्ध गति से ही ठीक-ठीक चलती है और गंतव्य

तक पहुँच पाती है। इसी उधेड़बुन में मैं ट्रे में दो गिलास पानी, दो कप चाय तथा एक पैकेट बिस्कुट का प्लेट में ही रख कर ले आया। सुनीता के पास टेबल पर रखते हुए मुस्कुराने की भरसक कोशिश करते हुए कहा, ''आओ, आराम से चाय और बिस्कुट का लुफ़्त उठाया जाए।''

सुनीता ने मुस्कुराते हुए बिस्कुट का पैकेट खोल और प्लेट में रखते हुए कहा, ''पता नहीं कब से आकर बैठे हुए हो। कुछ खाया भी न होगा। लो, पहले दो-तीन बिस्कुट खाकर ही पानी पीना और फिर चाय।''

मैंने उसके आदेशानुार ही सब किया। सच कहूँ, मन थोड़ा शांत हो गया था। तुरंत-फुरंत के उबाल में ज़रा कमी आ गई थी। पर समस्या के समाधान का कोई ओर छोर नज़र न आ रहा था।'' -- इतना कहते-कहते मुकेश का चेहरा तमतमा उठा था। मैंने हाथ पकड़ उसे शांत होने को कहा।

''शांत! अब तो मर कर ही शायद शांति मिल पाएगी।''

''नहीं-नहीं, समस्या का समाधान तो निकालना ही पड़ा होगा।''

''देखो तो, समस्या का समाधान मैं और सुनीता मिलकर दो साल में क्या निकाल पाए? हम, भगौड़े बन गए।''

''ऐसा क्या?''

''हाँ, अभी तो वह पहला एनकाउंटर था। अभी चार महीने ही बीते थे कि लड़के की जगह एक स्त्री वेशधारी ट्रॉसजेंडर आने लगा। शायद कम रुपयों में सौदा हो जाता रहा होगा। सुनीता काम में इतनी उलझी हुई थी कि वह इस तथाकथित इस सिरफ़िरे पुत्र को सद्मार्ग पर लाना कठिन मान रही थी। बस आए दिन एक ही बात कहती, ''हाय! मेरी ऊँची पढ़ाई और इस नौकरी ने तो मेरे तन, मन को ही नहीं मेरी आत्मा को भी निचोड़ कर रख दिया है। हर रात अमावस्या तुल्य प्रतीत होती है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। क्या मैं कायर की भाँति मैदान छोड़ दूँ और घर बैठकर इसकी पहरेदारी करूँ? क्या यह मेरी बात मानेगा? तुम कोई सुझाव क्यों नहीं देते? आख़िर इस झंझट से मुक्ति पाने का कोई तो रास्ता होगा?''

मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा उसके विलाप को सुनता और इतना ही कह पाता, ''देश तरक्की कर रहा है। सब आज़ाद हैं। पता करूँ कि भारत के संविधान में इस प्रकार के कुकर्मों की क्या सज़ा है? क्या यह भी शोध करूँ कि आज के माँ-बाप की औकात क्या है?''

इस बीच सुनीता जी कब उठ कर चली गईं और शाम की चाय के साथ बहुत कुछ खाने के लिए ले आईं। ''भाभी जी, मैं कहीं दूर से तो आया नहीं हूँ। चाय के साथ दो बिस्कुट ही काफ़ी थे। ये पकौड़े बनाने की तकलीफ़ क्यों कर डाली?''

''भाई साहब, आज बरसों बाद अपनी माताजी (सास वीना जी के लिए संबोधन) का तरीक़ा याद कर मैंने ये पकौड़े बनाए हैं। अब जाकर समझ आई है कि बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद ने हमारे समाज को खोखला कर दिया है। जो आनंद, जो ख़ुशी, जो तृप्ति अपने हाथ से बनी चीज़ों को खाने व खिलाने में होती है, वह रेडीमेड चीज़ों में कहाँ?''

बस इन्हीं बातों में आध-पौन घंटा बीत गया। सुनीता जी रात के खाने का निमंत्रण दे उठीं। मैंने हाथ जोड़ते हुए कहा, ''पहले ही इतना खिला दिया है कि अब डिनर की गुंजाइश भी नहीं है। दूसरे, शारदा इंतज़ार करते-करते थक रही होगी। मुझे अब चलना चाहिए।

''नहीं-नहीं, आप लोग बातचीत करें। मैं थोड़ी देर के लिए बाज़ार जा रही हूँ।''

''ठीक है, चाहो तो मैं साथ चलता हूँ'' -- मुकेश ने कहा।

''नहीं, आप लोग इत्मीनान से बैठिएगा।'' सुनीता ने चाय के कप और प्लेटें रसोई में रखीं और बाज़ार चली गई।

पल भर में मुकेश उसी मनःस्थिति में आ गया और बोला, ''राघव, वैसे तो सुनीता के सामने काफ़ी कुछ मैंने तुम्हें बताया और शेष भाग भी बयान कर सकता था। यदि एक पुरुष होते हुए भी वे आघात मुझे असह्य है ये तो फिर उन्हें जान कर सुनीता का क्या हाल होगा -- मैं अनुमान ही करता रह जाता हूँ। जानते हो अभी इससे भी कुछ ज़्यादा देखना भाग्य में लिखा रखा था'', ऐसा कह वह दो मिनट आँखें बंद कर मौन हो गया। मेरे पास सांत्वना के लिए उपयुक्त शब्द भी न थे। समझ नहीं पा रहा था कि उसकी दुःख-दर्द भरी कहानी सुन कर मैं उसका मन हल्का कर रहा हूँ या फिर उसके जख़्मों को नवीनता प्रदान कर रहा हूँ।

मुकेश ने आवाज़ को संयत कर कहना शुरू किया, ''चार-पाँच महीनों में दो-तीन सुंदर-सुंदर सी लड़कियाँ जब-तब मोहित के पास आने लगीं। इधर की ओर का दरवाज़ा बंद रहा। बस, पीछे से जाना-आना होता। कार की चाभी भी उसने थाम ली थी। हमारी ज़रूरत का ध्यान उसने क्योंकर करना था? इधर का दरवाज़ा तभी खुलता जब उसने फ़्रिज़ से फल, कोल्ड ड्रिंक्स आदि चीज़ें लेनी होती थीं।

एक दिन वह एक लड़की से कोर्ट मैरिज़ कर आ गया था। यह बात भी हमें उसके और लड़की के गले में पड़े फूल-मालाओं से पता चली। न राम कलाम हुई न ही हमने कोई विशेष रुचि दिखलाई। उसके पुकारने पर ही पता चला कि तथाकथित हमारी बहू का नाम सपना है। वह निःसंकोच रसोई में आकर जो कुछ बना-बनाया खाना होता था -- उसे दोनों के लिए परोस कर ले जाने लगी। शाम को बाज़ार से खाना मँगवा लेते थे। अभी महीना ही नहीं बीता था कि पुलिस आ गई। पता चला कि हम पर दहेज

की माँग का आरोप लगा दिया है। पुलिस ने हमारी नौकरी को ख़तरा बताते हुए हमसे काफ़ी पैसा ऐंठा। मरते क्या न करते? इधर मोहित ने सुनीता को दबाव डाल कर दस-दस लाख के दो चैक ले लिए। साथ में एक पत्र लिखवा लिया कि वे बख़ुशी शादी का उपहार स्वरूप दे रही हैं। इतना ही नहीं, तीन-चार दिन में बैंक मैनेजर से मिलकर सुनीता के जिन सावधि जमा और ख़ातों का वह नामित था -- वह सारी की सारी धनराशि अपने और सपना के संयुक्त खाते में डाल ली। 15 दिन के लिए वे हनीमून के लिए स्विट्ज़रलैंड चले गए।

सुनीता के दुःख का कोई आर-पार न था। बस एक-दूसरे को सांत्वना देने का असफल प्रयास करते रहते। सुनीता को वह घर काट खाने को दौड़ता। बस उसकी एक ही रट थी कि वापिस पुराने घर में चल कर रहते हैं। जयंत इन दिनों अमृतसर में रह रहा है। सुनीता फ़ोन पर उसे हर पल की ख़बर देती रहती। वह तो एक ही बात कहता, ''आप दोनों छुट्टी ले कर मेरे यहाँ कुछ दिन आ कर रह लो। छुट्टी और वह भी इस पेशे में सरल न थी। दूसरे, वह प्रारंभ से ही अकेले रहने का अभ्यस्त है। उसका खाने-पीने का क्या इंतज़ाम रहता होगा? इससे भी एक बड़ी बात यह थी कि घूम-फिर कर वापिस तो आना ही होगा। मोहित के हवाले घर करने का मतलब था कि हमारी पीठ फेरते ही घर-गृहस्थी का सामान इधर-उधर हो जाएगा। सो, जयंत से खुलकर बात की और शेष धनराशि जो ऐच्छिक सेवानिवृत्ति से मिलनी है -- उसे उसका नामित कर दिया जाएगा। हमें पेंशन मिलेगी। दोनों का गुज़र-बसर हो ही जाएगा। मोहित के लौट आने से पूर्व हम इस घर में आ गए हैं। जीवन में कुछ ठीक-ठीक सोच उठा तो ग्रेटर कैलाश वाले मकान के बारे में सोचेंगे।

अभी तो कुछ दिन मन को स्वस्थ करने में ही लग जाएँगे। फिर कहीं किसी चिकित्सालय में विचार-विमर्श के लिए मुफ़्त सेवाएँ प्रदान करने की योजना है। अपने और अपनों के लिए बहुत जी लिया, अब शेष जीवन समाज को अर्पित करने का संकल्प कर लिया है।''

अकस्मात् मैं घड़ी की ओर देख उठा और बोला, ''दोस्त भावी योजना में ईश्वर तुम्हारी पूरी-पूरी सहायता करे। सात बज रहे हैं। लो, सुनीता जी भी आ गई हैं। अब मुझे इज़ाज़त दो। फिर मिलते ही रहा करेंगे।'' मुकेश और सुनीता गेट तक मुझे छोड़ने आए। मैं भारी मगर स्वस्थ मन से घर की ओर चल पड़ा।

❑

रेनू नूर

पुस्तक लोकार्पण, विचार एवं काव्य गोष्ठी 2018 : एक रिपोर्ट

विधि भारती परिषद् द्वारा 7 जनवरी, 2018 को अपने कार्यालय के संगोष्ठी कक्ष में सायं 3-30 बजे एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण विधि भारती की महासचिव श्रीमती सन्तोष खन्ना के सद्यः प्रकाशित काव्य संग्रह 'समय का सच' का लोकार्पण, उस पर परिचर्चा एवं एक काव्य संगोष्ठी का आयोजन रहा। 'समय का सच' काव्य संग्रह का लोकार्पण प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं समाजशास्त्री पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि, डॉ. मंजुला दास (प्रिन्सिपल, सत्यवती कॉलेज), डॉ. रवि शर्मा, (प्राध्यापक, श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स), डॉ. प्रवेश सक्सेना, (पूर्व प्राध्यापिका, ज़ाकिर हुसैन कॉलेज), डॉ. उषा देव, (प्रतिष्ठित कहानीकार एवं पूर्व एसो. प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज) तथा उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. जगदीश सी. बत्रा के सान्निध्य में संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता भी पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि द्वारा की गई।

कार्यक्रम के प्रथम सत्र में सर्वप्रथम भारती अग्रवाल द्वारा 'समय का सच' काव्य-संग्रह में संकलित 'वंदना' का मधुर उच्चारण करके कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया, जिसमें कि माँ सरस्वती को नमन किया गया। इसके उपरांत डॉ. प्रवेश सक्सेना ने श्रीमती सन्तोष खन्ना के काव्य-संग्रह 'समय का सच' पर अपने विचार अभिव्यक्त किए तथा इस काव्य-संग्रह में संकलित विभिन्न कविताओं की अंतः अभिव्यक्ति को गोष्ठी में उपस्थित सभी श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया कि किस प्रकार श्रीमती खन्ना जी ने अपनी कविताओं में सामजिक पहलुओं को अपने चिंतन-मनन द्वारा समाज के सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा कि इस काव्य-संग्रह से ज्ञात होता है कि प्रत्येक कविता की प्रत्येक पंक्ति हमारे समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं आदि से संबंधित विभिन्न मुद्दों को रेखांकित करती हैं।

डॉ. उषा देव ने भी 'समय का सच' में संकलित कविताओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि कवयित्री की लेखनी उन विभिन्न सामजिक मुद्दों पर चली है जो कि हमारे समाज को विकसित होने से रोक रहे हैं। हमारे समाज की कुरीतियाँ हमारी भावी पीढ़ी को गर्त की ओर धकेल रही है। इन कुरीतियों को अब हमें स्वयं ही जड़ से ख़त्म करना होगा। यदि हम ऐसा नहीं कर पाए तो हमारी संस्कृति बच नहीं पाएगी।

कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. श्याम सिंह शशि ने श्रीमती सन्तोष खन्ना के नवीनतम काव्य-संग्रह के लिए उन्हें बधाई देते हुए कहा कि यह सौभाग्य की बात है कि आज भी हमारे समाज में ऐसे कवि-लेखक हैं जिनमें संपूर्ण विश्व की एकता तथा समाज के प्रति संवेदना है। कवयित्री का यह काव्य-संग्रह उनके विभिन्न भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता चलता है। इन्होंने समाज को कुछ नया रचने की प्रेरणा दी है। डॉ. मंजुला दास ने भी इस काव्य-संग्रह की प्रशंसा की तथा इसे साहित्य के क्षेत्र में एक नया आयाम बताया।

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता डॉ. रवि शर्मा ने की। डॉ. रवि शर्मा ने श्रीमती सन्तोष खन्ना के काव्य-संग्रह की विभिन्न कविताओं पर अपनी भावाभिव्यक्ति की तथा इतनी सफल कविताओं के लिए कवयित्री को बधाई दी। उन्होंने 'समय का सच' काव्य-संग्रह की कविताओं की सहजता, संप्रेषणीयता और संवेदनशीलता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि सन्तोष खन्ना जी की कविताएँ हाशिए पर आम आदमी के दर्द की एक सशक्त आवाज़ बनी हैं। उन्होंने काव्य-संग्रह से दो कविताओं का पाठ भी किया। इसी क्रम में भारत एशियाई साहित्य अकादमी से श्री अशोक खन्ना और अखंड भारत पत्रिका के संस्थापक संपादक श्री अरविंद भारत ने भी 'समय का सच' काव्य-संग्रह पर अपने विचार व्यक्त किए। इस आयोजन में श्री अशोक खन्ना, डॉ. मंजुला दास, डॉ. उषा देव, डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प', डॉ. प्रवेश सक्सेना, सरिता गुप्ता, अनीता प्रभाकर, पूनम माटिया, ओम सपरा, सीमाब सुल्तानपुरी, रजनी छाबड़ा, रामलोचन, भारती अग्रवाल, अरविंद भारत, सुमन तनेजा, उमाकांत खुबालकर, निवेदिता झा, प्रदीप अग्रवाल, अर्चना अनुप्रिया, किरण कपूर एवं सन्तोष खन्ना ने अपनी-अपनी स्व-रचित कविताओं का पाठ किया। सभी कवियों की कविताएँ इतनी भावपूर्ण रहीं कि सभी श्रोतागण वाह-वाह कह उठे तथा सभी ने एक-दूसरे को उनकी कविताओं के लिए बधाईयाँ दीं।

इस कार्यक्रम का कुशल संचालन सूर्य प्रकाश सेमवाल, न्यूज़ एडिटर, पंजाब केसरी ने किया। हम आशा करते हैं कि कवयित्री का अन्य काव्य-संग्रह जल्दी ही हमारे समक्ष आएगा जिससे कि हम फिर से उनके संकलित भावों द्वारा स्वयं को ज्ञानवान् बना सकें।

❑

संतोष बंसल

तीन तलाक तथा बहु-विवाह और निकाह हलाला

जब भी 'तीन तलाक़' मुद्दे पर बात होती, मुझे अक्सर आठवें दशक में देखी 'निकाह' फिल्म याद आती जिसमें नायक नायिका को मुँह से तीन तलाक़ बोल कर जन्म जन्म का रिश्ता पल भर में तोड़ देता है। उसका एक गाना 'दिल के अरमाँ आँसुओं में बह गए' अब तक नहीं भुला पाती, जिसमें नायिका का दर्द में डूबा ज़र्द चेहरा आँखों के सामने तैर जाता है। इस फिल्म के माध्यम से ही, तब मुझे मुस्लिम समाज की इस कुप्रथा का भान हुआ था। इससे पहले मशहूर अदाकार राजेंदर कुमार की कई फिल्मों से ही मुस्लिम समाज के रुहानी और रुबाइयों भरे इश्क से रुबरू हुई थी तथा उर्दू की शेरों शायरी सुनकर मुहब्बत के नाज़ुक फलसफे से। प्रेम की बेमिसाल निशानी ताजमहल तो दुनिया की जीती जागती मिसाल है, जिसे देखने दूर दूर से लोग आते है। किंतु इस्लाम में चार विवाह की अनुमति और इसके परिणामों को जब किस्से कहानियों में सुना-पढ़ा तो असलियत मालूम हुई। मशहूर कथाकार आपा इस्मत चुग्ताई और सआदत हसन मंटो की कहानियाँ पढ़ी तो इस समाज की रस्मो-रवायतों की जानकारी के साथ, रुढ़ियों से दबे-छिपे इनके पिछड़ेपन का अहसास हुआ।

मुस्लिम महिलाओं की बुर्के में रहने की क़वायद और उनकी शादी के बाद की स्थिति सब पर्दानशी ही रहती, अगर यह मुद्दा सबके सामने न आता। अब कुछ शिक्षित भुक्तभोगी महिलाओं के साहस से तीन तलाक़ के खिलाफ़ आवाज़ उठी और भारत में इस पर रोक लगाने की मांग रखी गई। उत्तराखंड के काशीपुर की सायरा बानो ने तीन तलाक़ के खिलाफ़ कोर्ट में एक अर्जी दाखिल की थी, जिस पर सायरा का तर्क था कि तीन तलाक़ न तो इस्लाम का हिस्सा है और न ही आस्था का। सहारनपुर की आतिया साबरी भी तीन तलाक़ के खिलाफ़ आवाज़ बुलंद कर सामाजिक बंदिशों के विरुद्ध मुखर होकर देश की सबसे बड़ी अदालत में पहुँची थी। इसी को मद्देनज़र रखते हुए 22 अगस्त, 2017 में उच्चतम

न्यायालय ने अपने फैसले में तीन तलाक़ को ग़ैर-क़ानूनी और असंवैधानिक घोषित किया तथा सरकार को छह महीने के भीतर इस पर क़ानून लाने की माँग की। सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने बहुमत के निर्णय में मुस्लिम समाज में एक बार में तीन तलाक़ देने की प्रथा को निरस्त करते हुए अपनी व्यवस्था में इसे असंवैधानिक, गैर-क़ानूनी और शून्य क़रार दिया।

केंद्र सरकार की ओर से तीन तलाक़ को ख़त्म करने के संकेत के बाद देश भर में इस पर चर्चा शुरू हो गई। समाज के सभी तबकों के साथ, मुस्लिम महिलाओं ने इसका ज़ोरदार समर्थन किया और माननीय प्रधान मंत्री जी ने जब उत्तर प्रदेश में चुनाव के वक्त तीन तलाक़ के खिलाफ़ क़ानून लाने के लिए घोषणा की, तो सारी मुस्लिम महिलाएँ भारतीय जनता पार्टी को वोट दे आईं। योगी के मुख्यमंत्री बनने के साथ ही प्रधान मंत्री द्वारा तीन तलाक़ मुद्दे पर क़ानूनी मोहर लगवाने की घोषणा हुई तथा उच्चतम न्यायालय की समय सीमा को ध्यान में रखते हुए लोकसभा में तो यह बिल पास कर दिया गया, किंतु राज्य सभा में कुछ अड़चने चल रही है। सभी विपक्षी दल उच्च सदन में विधेयक पर ज़्यादा विचार विमर्श के लिए समिति के पास भेजने की माँग कर रहे हैं।

क़ानून मंत्री श्री रवि शंकर प्रसाद ने अपील करते हुए कहा कि ''इसे सियासत की नज़र से न देखा जाए और न ही मज़हब के तराजू से तोला जाए। उधर मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और दारु उलूम जैसी संस्थाएँ इस विधयेक को "तीन तलाक़ के बहाने शरीयत में दख़ल अंदाजी "मानते हुए कह रही है कि तीन तलाक़ मज़हबी मामला है, जिसको कुरआन और शरीयत की रोशनी में हल किया जाना चाहिए। कुछ इसी तरह का वक्तव्य "ए.आई.एम.आई.एम. "के असासुद्दीन औवेसी ने देते हुए कहा है, "केंद्र साज़िश के तहत तीन तलाक़ विधेयक लेकर आई है। यह विधेयक मुस्लिमों को तबाह करने के लिए लाया जा रहा है। इससे मुस्लिम महिलाओं का फ़ायदा नहीं होगा। विधेयक से मूल अधिकारों का हनन हो रहा है। किसी भी देश में तलाक़ को लेकर दंड संहिता नहीं है। संसद ने सांसद औवेसी द्वारा पेश संशोधन प्रस्ताव खारिज़ कर दिए। जयपुर की सामाजिक कार्यकर्ता और मुस्लिम वूमेन वेलफेयर सोसाइटी की उपाध्यक्ष नसीम अख्तर ने कहा, "तीन तलाक़ के मामले को राजनैतिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।'' मुस्लिम वूमन लॉ बोर्ड की अध्यक्ष शाईश्ता अंबर ने सरकार के इस फैसले का स्वागत करते हुए कहा कि इस क़ानून की हमें बहुत ज़रूरत है।

आगरा की पीड़िता फैज़ा खान ने ख़ुशी जताते हुए कहा, "हम इस बात से काफ़ी ख़ुश है कि मोदी जी और योगीजी द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया सफल हो रही है। यह दिन मुस्लिम महिलाओं की ज़िंदगी में ईद और बकरीद से भी ज़्यादा अहम होगा। लखनऊ

की हूमा ख्याना ने भी इसके पक्ष में अपना मत रखते हुए कहा, "हम जैसी तलाक़ शुदा महिलाओं और तलाक़ की धमकी झेलने वाली अन्य महिलाओं को इस क़ानून से मदद मिलेगी। अगर घरेलू हिंसा की तरह तीन तलाक़ को लेकर क़ानून बनता है, तो इससे हमें राहत ही मिलेगी।'' आख़िर यह तीन तलाक़ असलियत में क्या है? मुस्लिम समुदाय में इसके कौन से अलग-अलग तरीक़े है? इस पर हम क्रमानुसार प्रकाश डालते हैं --

1. **तलाक-ए-बिद्धत :** एक बार में तीन तलाक़ बोल देने को तलाक़-ए-बिद्धत कहा जाता है।
2. **तलाक-ए-एहसन :** एक बार में एक तलाक़ बोलने और इसके बाद तीन महीने तक इंतजार करना। इस दौरान अगर पति पत्नी के बीच सुलह हो जाए तो तलाक़ नहीं होगा। अगर सुलह नहीं हुई तो तीन महीने के बाद तलाक़ हो जाएगा।
3. **तलाक-ए-हसना :** पत्नी के मासिक धर्म से निबटने में ही तलाक़ बोला जाता है। अगले मासिक धर्म के दूसरी बार तलाक़ बोला जाता है। तीसरे महीने के मासिक धर्म के बाद तलाक़ बोला जाता है। इस तरह तलाक़ माना जाता है।
4. **तलाक-ए-बाइन :** एक चैनल के स्टिंग ऑपरेशन में एक मौलवी ऐसे ही एक तरीके 'तलाक़-ए-बाइन' से तलाक़ देना बताता दिख रहा है। इसमें पुरुष तीन की बजाय दो तलाक़ देता है व दंपति के बीच सुलह की गुंज़ाइश बनी रहती है। तलाक़ के बाद महिला द्वारा की जाने वाली "इद्धत" की अवधि पूरा होने पर पुनः निकाह होने की गुंजाइश होती है। इसमें हलाला की भी ज़रूरत नहीं होती।

तीन तलाक पर प्रतिबंध बिल के अहम् प्रावधान

1. किसी भी तरह का तीन तलाक़ (बोलकर, लिखकर या ईमेल, एस एम् एस और व्हाट्सअप जैसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से) ग़ैर-क़ानूनी होगा।
2. एक साथ तीन तलाक़ बोलना गैर-ज़मानती और संगेय अपराध होगा। ऐसा करने वाले पति को तीन साल के कारावास तक की सज़ा हो सकती है।
3. पीड़ित महिला मजिस्ट्रेट से नाबालिग़ बच्चों के संरक्षण का अनुरोध कर सकती है।
4. क़ानून सिर्फ़ एक बार में तीन तलाक़ (तलाक़-ए-बिद्धत)के मामले में लागू होगा।
5. जिन महिलाओं को तीन तलाक़ दिया जा चुका है, वे महिलाएँ भी अपने नाबालिग़ बच्चों की कस्टडी और गुज़ारा भत्ता माँग सकेगी।

इसमें कई सवाल उठाए गए हैं, जैसे कि तीन तलाक़ साबित करने की ज़िम्मेदारी महिलाओं पर डाली गई है, जिससे वे अदालतों के चक्कर काटती रहेंगी। दूसरे अगर पति जेल गया तो पत्नी और बच्चों का गुज़ाराभत्ता कौन देगा? इसके अतिरिक्त प्रमुख मुस्लिम महिला अधिकार कार्यकर्ताओं ने कहा कि मुस्लिम महिलाओं को इंसाफ़ दिलाने का मकसद

तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक प्रस्तावित क़ानून में शादी की उम्र, बच्चों के संरक्षण जैसे मुद्दे शामिल नहीं किये जाते। तीन तलाक़ को सर्वोच्च अदालत तक ले जाने वाली सायरा बानो ने कहा, ''अब उनकी अगली लड़ाई बहु-विवाह और निकाह हलाला के खिलाफ़ होगी। हमारे समाज में इसके लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए।''

अब मार्च, 2018 में समीना 'बहु-विवाह और निकाह हलाला' के खिलाफ़ शीर्ष अदालत पहुँची। तीन तलाक़ के जरिए दो बार छोड़ी गई समीना ने इन कुप्रथाओं को भी असंवैधानिक घोषित करने के लिए सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की है। उच्चतम न्यायालय ने केंद्र सरकार को नोटिस जारी कर याचिकाओं पर जवाब माँगा है कि बहु-विवाह और निकाह-हलाला जायज़ कैसे है? यह संविधान पीठ जाँचेंगी। मुख्य न्यायाधीश की तीन-सदस्यीय पीठ ने समानता के अधिकार का हनन और लैंगिक न्याय सहित कई बिंदुओं पर दायर जनहित याचिकाओं पर विचार किया और 2017 में संविधान पीठ के बहुमत के फैसले में तीन तलाक़ को असंवैधानिक करार देने वाले प्रकरण से बहु-विवाह और निकाह हलाला के मुद्दे बाहर रखे गए थे? इस दलील पर भी विचार किया।

याचिका दायर करने वाली समीना की पहली शादी 1999 ईस्वी में हुई, जिससे उन्हें दो बच्चे हुए। लगातार बुरे व्यवहार के बाद शौहर ने उन्हें तीन तलाक़ दे दिया। इसके बाद उन पर पति से दोबारा विवाह के लिए दबाव डाला गया और उन्हें पहले से शादी शुदा उम्रदराज व्यक्ति के साथ शादी करनी पड़ी। जब वह गर्भवती हो गई तो शौहर ने फ़ोन पर तीन तलाक़ दे दिया। समीना अब अपने तीन बच्चो के साथ अकेली रहती है। समीना ने कोर्ट से कहा है कि यह याचिका उन्होंने सिर्फ़ अपने लिए नहीं, बल्कि उन तमाम औरतों के लिए डाली है, जो इस प्रथा से पीड़ित है। इसके साथ ही हैदराबाद की एक वकील ने 18 मार्च को बहु-विवाह को चुनौती देते हुए, 'मुता' और 'निकाह मिसयर' की प्रथा का विरोध किया। ये निकाह तय समय के लिए होता है और मेहर की रक़म तय हो जाती है। निकाह से पहले ही यह तय कर लिया जाता है, जिसमें मुस्लिम महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन होता है। मौजूदा मुस्लिम पर्सनल लॉ के प्रावधानों के मुताबिक़ अगर किसी मुस्लिम महिला का तलाक़ हो चुका है और वह उसी पति से दोबारा निकाह करना चाहती है, तो उसे पहले किसी और शख़्स से शादी कर एक रात गुजारनी होती है। इसके अतिरिक्त, बहु-विवाह की प्रथा के तहत मुस्लिम समुदाय में एक आदमी को चार शादियाँ करने की इजाज़त है। इसके लिए उसे तलाक़ लेने की भी ज़रूरत नहीं और वह एक साथ चार पत्नियाँ रख सकता है। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार बहु-विवाह और निकाह हलाला के मुद्दे पर विचार के लिए पाँच-सदस्यीय संविधान पीठ का गठन किया जाएगा।

मुस्लिम महिलाओं का कहना है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ की वजह से पति या पत्नी के जीवन काल में ही दूसरी शादी को अपराध के दायरे में लाने संबंधी भारतीय दंड संहिता की धारा 494 इस समुदाय के लिए निरर्थक है। कोई भी शादीशुदा मुस्लिम महिला ऐसा करने वाले शौहर के खिलाफ़ शिकायत दायर नहीं कर सकती। शौहर द्वारा तलाक़ दिए बगैर दूसरी महिला से शादी करने पर पुलिस द्वारा धारा-494 और धारा 498-ए के तहत रिपोर्ट दर्ज़ करने से इंकार कर दिया जाता है क्योंकि ये धाराएँ 'हिंदू मैरिज एक्ट' के तहत मुस्लिमों पर लागू नहीं होती। अतः उन्होंने 'निकाह हलाला' को धारा 375 के तहत बलात्कार या दुष्कर्म का अपराध घोषित करने तथा बहु-विवाह के मामले धारा 494 के अधीन अपराध मान सज़ा करने की माँग की है। याचिका में कहा कि आई.पी.सी., 1860 के सभी प्रावधान देश के सभी नागरिकों पर लागू हों एवं तीन तलाक़ को भी धारा 498-ए के तहत प्रताड़ना माना जाए। उन्होंने आग्रह किया है कि मुस्लिम विवाह विच्छेद क़ानून, 1939 को असंवैधानिक और संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 21 और 25 के प्रावधानों का हनन करने वाला घोषित किया जाए तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) एप्लीकेशन एक्ट, 1937 की धारा 2 को मनमाना और संविधान के खिलाफ़ ठहराया जाए क्योंकि यह बहु-विवाह और हलाला को मान्यता देता है। पीड़िताओं द्वारा मुस्लिम देशों का हवाला देते हुए कहा गया है कि ट्यूनीशिया और तुर्की में बहु-विवाह ग़ैर-क़ानूनी है। ईराक, सीरिया, बांग्लादेश, पाकिस्तान में इसकी अनुमति तभी है, जब उचित प्राधिकार फैसला दे। याचिकाकर्ता ने कुरआन का हवाला देते हुए कहा कि बहु-विवाह की प्रथा पुराने समय में युद्ध के दौरान विधवाओं के कल्याण और बच्चों की देखभाल को ध्यान में रखते हुए शुरू की गई थी। इसे कुरआन की आयतों में जगह दी गई, लेकिन यह मौजूदा समय में बहु-विवाह करने की इजाज़त नहीं देती है। लेकिन 'आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' (ए.आई.एम.पी.एल.बी.) ने दो टूक कहा कि 'तीन तलाक़ बिल' पर प्रस्तावित विधेयक उन्हें मंजूर नहीं और इस पर सख़्त एतराज जताते हुए, केंद्र सरकार से विधेयक वापिस लेने की माँग की। लखनऊ में बोर्ड की कार्यकारिणी समिति की आपात बैठक के बाद बोर्ड के प्रवक्ता मौलाना खलील-उर-रहमान सज्जाद नोमानी ने कहा, "यह बेहद आपत्तिजनक है कि केंद्र ने मसौदा तैयार करने से पहले किसी भी मुस्लिम संस्था यानी मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड, मुस्लिम विद्वान् आदि से राय-मशविरा नहीं किया।" यह मुस्लिम पर्सनल लॉ में दख़ल-अंदाजी है।

लोक सभा में तीन तलाक़ के खिलाफ़ 'मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण विधेयक' पर चर्चा के दौरान केंद्र सरकार ने तमाम आशंकाओं को ख़ारिज़ करते हुए स्पष्ट किया कि यह बिल किसी को डराने या धमकाने के लिए नहीं है न ही इसे समान नागरिक

संहिता से जोड़ कर देखे जाने की ज़रूरत है। इस ऐतिहासक मौके पर सत्तापक्ष के साथ विपक्ष भी इस बात पर ज़रूर सहमत नज़र आया कि यह क़ानून किसी मजहब से नहीं, बल्कि नारी सम्मान से जुड़ा है। क़ानून मंत्री श्री रवि शंकर प्रसाद ने कहा कि एक तरफ़ डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया तथा स्किल इंडिया जैसी योजनाएँ चल रही है, दूसरी तरफ़ तलाक़-तलाक़-तलाक़ और फिर गेटआउट। मुस्लिम महिला की बाकी की सारी ज़िंदगी ख़त्म। यह अब नहीं चलेगा। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है और हमारे यहाँ तीन तलाक़ के जरिए महिलाओं पर अमानवीय व्यवहार होता है। इस प्रकार तीन तलाक़, बहु-विवाह और निकाह हलाला की प्रथाओं की वजह से मुस्लिम महिलाओं को बहुत अधिक नुक़सान हो रहा है और इससे उनके संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 में प्रदत्त मौलिक अधिकारों का भी हनन हो रहा है। अतः 'आल इंडिया मुस्लिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड' की सदस्य शाइस्ता के शब्दों में, ''मेरी सभी सांसदों से अपील है कि वह इस विधेयक को पास करने में योगदान दे।''

❑

लघुकथा

शोभना श्याम

फरक

अभी कुछ ही दिन हुए एक प्रसिद्ध समाज-सेवी और एक जुझारू पत्रकार के अथक प्रयत्नों से आख़िरकार उन पंद्रह मज़लूम महिलाओं को उस बदनाम चकले से आज़ाद कराकर नारी-निकेतन में लाया गया था। बड़े-बड़े अखबारों, टेलीविज़न, सोशल-मीडिया सब जगह इस सनसनीखेज अभियान की कवरेज थी।

शुरू-शुरू में बाढ़ की तरह उफनता पत्रकारों का मजमा अब छंट चुका था। बस बहुत हुआ, अब इन महिलाओं को सामान्य ज़िंदगी में भी लाना था, सो नारी-निकेतन के दरवाज़े आगंतुकों के लिए, विशेषतः पत्रकारों के लिए बंद कर दिए गए थे।

वह दूर-दराज से आया पत्रकार जाने कैसे अंदर पहुँच गया। उसने एक कोने में चुपचाप अलग-थलग बैठी उस लड़की से पूछा, ''कैसा लग रहा है उस नर्क से निकल कर? बहुत फ़र्क़ आ गया होगा अब तो ज़िंदगी में?''

''हाँ... फरक तो है साहेब! इहाँ... पइसा नई मिलता।''

❑

Devnarayan Meena

The Constitution and the Children

The Indian Constitution is a living document, an instrument which makes the government system work. Children are the future of a country. They bring the development & prosperity to the country. The Constitution is the pioneer of child rights, which contains various key sections which not only empower children but also ensure that their rights are well protected and preserved. Children are the greatest gift of Humanity. They are entitled to a healthy and free environment of growth and development through which they can develop themselves and in turn lead the nation to large scale progress.

Keywords : Constitution of India, Children, Healthy Environment, Child Rights

WHO IS CHILD? According to international law, a 'child' means every human being below the age of 18 years. This is a universally accepted definition of a child and comes from the United Nations Convention on the Rights of the Child (UNCRC), an international legal instrument accepted and ratified by most countries.

Legal Definition of a Child

Article 45 of the Constitution of India defines child as a person younger than 14 years.

According to the Juvenile Justice (care and Protection of a Child) Act, a child is a person who has not completed 18 years of age.

India has always recognized the category of persons below the age of 18 years as distinct legal entity. That is precisely why people can vote or get a driving license or enter into legal contracts only when they attain the age of 18 years. Moreover, after ratifying the UNCRC in 1992, India changed its law on juvenile justice to ensure that every person below the age of 18 years, who is in need of care and protection, is entitled to receive it from the State.

What makes a person a 'child' is the person's 'age.' Even if a person under the age of 18 years is married and has children of her/his own, she/he is recognized as a child according to international standards.

CONSTITUTIONAL PROVISIONS REGARDING CHILD RIGHTS

The Constitution of India guarantees all children certain rights, which have been specially included for them. These include:

Article 14 : The State shall not deny to any person equality before the law or the equal protection of the laws within the territory of India.

Article 15: (1) The State shall not discriminate against any citizen on grounds only of religion, race, caste, sex, and place of birth or any of them.

(2) No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, place of birth or any of them, be subject to any disability, liability, restriction or condition with regard to - Prohibition of discrimination on grounds of religion, race, caste, sex or place of birth.

(a) access to shops, public restaurants, hotels and places of public entertainment; or

(b) the use of wells, tanks, bathing ghats, roads and places of public resort maintained wholly or partly out of State funds or dedicated to the use of the general public.

(3) Nothing in this article shall prevent the State from making any special provision for women and children.

(4) Nothing in this article or in clause (2) of article 29 shall prevent the State from making any special provision for the advancement of any socially and educationally backward classes of citizens or for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes.

(5) Nothing in this article or in sub-clause (g) of clause (1) of article 19 shall prevent the State from making any special provision, by law, for the advancement of any socially and educationally backward classes of citizens or for the Scheduled Castes or the Scheduled Tribes in so far as such special provisions relate to their admission to educational institutions including private educational institutions, whether aided or unaided by the State, other than the minority educational institutions referred to in clause (1) of article 30.]

Article 21. No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law.

Article 21A. The State shall provide free and compulsory education to all children of the age of six to fourteen years in such manner as the State may, by law, determine.

Article 23. (1) Traffic in human beings and beggar and other similar forms of forced labour are prohibited and any contravention of this provision

shall be an offence punishable in accordance with law.

(2) Nothing in this article shall prevent the State from imposing compulsory service for public purposes, and in imposing such service the State shall not make any discrimination on grounds only of religion, race, caste or class or any of them.

Article 24. Right to be protected from any hazardous employment till the age of 14.

Article 29. (1) Any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language, script or culture of its own shall have the right to conserve the same.

(2) No citizen shall be denied admission into any educational institution maintained by the State or receiving aid out of State funds on grounds only of religion, race, caste, language or any of them.

Article 39 (e) that the health and strength of workers, men and women, and the tender age of children are not abused and that citizens are not forced by economic necessity to enter avocations unsuited to their age or strength;

(f) that children are given opportunities and facilities to develop in a healthy manner and in conditions of freedom and dignity and that childhood and youth are protected against exploitation and against moral and material abandonment.

Article 45. The State shall endeavour to provide, within a period of ten years from the commencement of this Constitution, for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years.]

Article 46. The State shall promote with special care the educational and economic interests of the weaker sections of the people, and, in particular, of the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes, and shall protect them from social injustice and all forms of exploitation.

Article 47. The State shall regard the raising of the level of nutrition and the standard of living of its people and the improvement of public health as among its primary duties and, in particular, the State shall endeavour to bring about prohibition of the consumption except for medicinal purposes of intoxicating drinks and of drugs which are injurious to health.

Article 51A(k). Parent or guardian to provide opportunities for education to his child or, as the case may be, ward between the age of six and fourteen years.

Besides the Constitution, there are several laws that specifically apply to children. As responsible teachers and citizens, it is advisable that you are aware of them and their significance. These have been described in different sections of this booklet along with the issues they deal with.

INTERNATIONAL LAW PROVISIONS REGARDING CHILD RIGHTS

United Nations Convention on the Rights of the Child

The most significant of all international laws for children is the UN Convention on the Rights of the Child, popularly referred to as the CRC. This, together with our Indian Constitution and Laws, determine what rights all children must have.

What is the UN Convention on the Rights of the Child?

Human rights belong to all people, regardless of their age, including children. However, because of their special status - whereby children need extra protection and guidance from adults - children also have some special rights of their own. These are called children's rights and they are laid out in the UN Convention on the Rights of the Child (CRC).

Significant features of the UN Convention on the Rights of the Child (CRC)

- Applies equally to both girls and boys up to the age of 18, even if they are married or already have children of their own.
- The convention is guided by the principles of 'Best Interest of the Child' and 'Non-discrimination' and 'Respect for views of the child.'
- It emphasises the importance of the family and the need to create an environment that is conducive to the healthy growth and development of children.
- It obligates the state to respect and ensure that children get a fair and equitable deal in society.

It draws attention to four sets of civil, political, social, economic and cultural rights:

- Survival
- Protection
- Development
- Participation

Right to Survival includes

- Right to life.
- The highest attainable standard of health.
- Nutrition.
- Adequate standard of living.
- A name and a nationality.

Right to Development includes

- Right to education.
- Support for early childhood care and development.
- Social security.
- Right to leisure, recreation and cultural activities.

Right to Protection includes freedom from all forms of

- Exploitation.
- Abuse.
- Inhuman or degrading treatment.
- Neglect.
- Special protection in special circumstances such as situations of emergency and armed conflicts, in case of disability etc.

Right to Participation includes

- Respect for the views of the child.
- Freedom of expression.
- Access to appropriate information.
- Freedom of thought, conscience and religion.

All rights are dependent on each other and are indivisible. However, because of their nature all rights are divided into:

IMPLEMENTATION OF INTERNATIONAL LAW IN INDIA

International law does not become automatically applicable in India. It needs to be translated into national law. But they can be cited as additional documents. Supreme Court has used it to make judgments, which have now become case law.

Githa Hariharan & Another Vs. Reserve Bank of India & Another, (February 17, 1999) Supreme Court of India stated, "India is a signatory to CEDAW….the interpretation..placed on s6(a) gives effect to the principles contained in these instruments. The domestic courts are under an obligation to give due regard to international conventions and norms for construing domestic laws when there is no inconsistency between them."

Before we refer to the international conventions and norms having relevance in this field and the manner in which they assume significance in application judicial interpretation, we may advert to some other provisions in the Constitution which permit such use… Article 253- legislation for giving effect to international agreements. Notwithstanding anything in the foregoing provisions of this Chapter, Parliament has power to make any law for the whole or any part of the territory of India for implementing any treaty. Agreement or convention with any other country or countries or any decision made at any international conference, association or other body.

People's Union for Civil Liberties (PUCL) Vs. Union of India : The Supreme Court of India after referring to International Covenant on Civil and Political Rights and Universal Declaration of Human Rights observed that, "It is almost an accepted position of law that rule of customary International law which are not contrary to the municipal law shall deemed to be incorporated in the Domestic law."

Conclusion : Children are the greatest gift of humanity. Therefore, it is our prior duty to provide a healthy environment to the children and protect them from all dangers. As the Constitution of India and United Nations Convention guarantees fundamental rights to the all children, it is our bounded duty to care and support them from all dangers and make every child to feel secure, cared, loved and well protected. If our country can make this change, then there won't be any child abuse, child labour or illiterate in our country. Let's feel responsible to care for the rights of the children.

❑

References and Official Websites

1. The Constitution of India (93rd Amendment) Act, 2005, S.2 (w.e.f. 20.01.2006)
2. The Constitution of India (86th Amendment) Act, 2002, S.2, S.3, S.4 (w.e.f.01.04.2010)
3. The Constitution of India (42nd Amendment) Act, 1976, S.7,cl(f) (w.e.f.03.01.1977)
4. Bhuvan & Kumar : The Constitution of India, As amended by the Constitution (One Hundred & First Amendment) Act, 2016) Ekta Law Agency (2017), Allahabad.
5. Basu, D.D : Introduction to the Constitution of India, Vol.11, Lexis Nexis (2015)
6. United Nations Convention on the Rights of the Child : Adopted and opened for signature, ratification and accession by General Assembly resolution 44/25 of 20 November 1989; entry into force 2 September, 1990, in accordance with article 49
7. Githa Hariharan & Another Vs. Reserve Bank of India & Another, (February 17, 1999)
8. Vishaka & Others Vs. State of Rajasthan & Others, AIR, 1997 SC 3011
9. People's Union for Civil Liberties (PUCL) Vs. Union of India
10. People's Union for Democratic Rights v. Union of India , (1982) 3 SCC 235; AIR 1982 SC 1473

Ms. Chetali Solanki

Lifting the Apartheid : An Insight to Rights of Forest Dwellers

From times immemorial, the forest dwellers have shared isolation with forests and have lived in a harmonious and symbiotic relation causing no impairment to the forests. But with the dawn of globalisation, the challenge in promoting the interests of forest dwellers has faced teething troubles which has created a lag in reaching people out there.

The forests have always played a significant role in commencing life for humans and are still support the survival of 100 million tribal people[1] who live in interiors or in the vicinity of the forests. These people's entire livelihood depends on the existence of these forests which is being shattered in the churns of urbanisation and globalisation. Thus, the lives of these forest dwellers get affected as their socio-economic and cultural patterns get affected in this process. Being scattered in many states, the population of these people is very often neglected, hence they suffer a life deficient in terms of recognition and rights.

Before independence, when the Britishers conquered India, these forests were commercialised to supply timber for various purposes. The commercialisation of the forest area restricted these dwellers freedom to use or exploit the forest produce and as the forests were administered for generating revenue, the margin of survival kept on decreasing for the people depending on forests. Eventually, all the laws made during the colonial rule were to advance and benefit the British. 97 percent of the forest area was brought under the state's ownership which in effect curtailed the access for the forest dwelling indigenous communities.[2] After India got independence and enacted the National Forest Policy, 1952, dwellers were again left with no rights i.e., rights to the foresters were denied. As the source of their survival got into the clutches of modernisation, the dwellers were sidelined to search for a newer source of survival which increased migrations towards

rural and urban areas and hiked unemployment and poverty and made the condition worse and lives pitiable.

The Government passed the Forest Rights Act (FRA) (Scheduled Tribes and Other Traditional Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006) to provide title (residing and holding) rights to the forest dwelling tribes and communities who have been residing in the areas of forest from generations.

Since 2006, the traditional dwellers and other indigenous group's rights have been at stake and even after the passing of the FRA, 2006, majority of the tribal communities experience grave human rights violations and are unaware of their right to these forests.

The international society has at every point propagated the importance of human rights and has taken all the crucial steps to preserve the inherent rights individual and the human family at large. To provide to forest dwellers specific recognition, the *Indigenous & Tribal Population Convention* in 1957 was introduced at the global level which was an attempt by the global community to recognise these people and to provide them the essence of *justice, equality and freedom.*

Indigenous & Tribal Population Convention, 1957[3]

The convention is divided into six parts under which it deals with overall development of the tribals and the indigenous people. Part I of the convention consist of 10 Articles and it deals with the provisions of General Policy, on the other hand, Part II of the Convention deals with Articles ranging from 11 to 14 and it deals with the provisions of lands and its holdings, Part III, Article 15 of the convention deals with medical assistance and health facilities to the tribals, Part IV of the convention deals with vocational training programs and provisions related to handicrafts and rural industries and it consist of Articles ranging from 16 to 18, Part V, Article 19 & 20 of the Convention deals with the provisions of economic and social security, Part VI, Article 21- 26 of the Convention deals with the provisions of education and means of communication.

Brief recap of forest governance in pre-British and British India

During British India, the needs and greed of the Empire dictated the management of forests. The Forest Charter of 1855 has been the first attempt of the British Indian government in the direction of forest governance. Teak timber was made to be state property, and strict regulations were put on its trade. The forest department was then organised and our first ever Forest Act was enacted. The Indian Forest Act, 1865, was to follow the Charter of 1855, amended in 1878 and then in 1927. The government was empowered by the 1865 Act to appropriate any land

covered with trees. This Act was replaced by the Indian Forest Act of 1878 for strict state control over forest resources. This Act took away all privileges and rights that were not explicitly given.[4]

The British Indian government brought its first forest policy by a resolution on October 19, 1894. It was meant for state control over forests and the need to exploit forests to augment state revenue. In short, during British rule, a forest department was organised, a systematic inventory of trees carried out, customary rights of people over forest land and produce curtailed and transformed into concessions to be enjoyed at the will of forest officials, and, most important, forests became a major source of revenue for the government.[5]

Forest governance in independent India, 1947-2011

Forest governance in independent India was divided into 3 phases. In the first phase, the idea very clearly was to ensure that forests be made to work to generate revenue which, in turn, would support development and the country's industrialisation. The second phase was when conservationists had a field day and their exclusionist conservation agenda was the dominant tool of forest management. Legislation on forest and wildlife conservation was enacted; people's rights were also given their due place in these enactments but were not implemented with the same spirit on the ground. It wasn't until 1988 that the third phase in forest management can be said to have begun, when, for the first time, the national forest policy articulated that people living in and around forests and dependent on them for their livelihood and sustenance should have first charge of forest produce. After this, the government did take small but significant steps in the form of Joint Forest Management (JFM) to make forest-dwellers stakeholders in the governance of forests.

Since Independence, food security for starving and hungry Indians, industrialisation and development activities such as irrigation projects and large hydroelectric power projects were more important. Thus forest management in those days was to serve this purpose. Rural forest-dependent people and their livelihood needs was the last thing on the minds of people involved in forest management.[6]

The Wildlife Protection Act, 1972 was passed at request of state governments. The Act indirectly had a significant impact on forest management and on forest dwellers for their sustenance and livelihood. The focus was protection and conservation of wildlife, protection of plant and animal species, and ensuring ecological and environmental sustainability. No attention was paid to forest-inhabiting and dependent communities and made their customary rights and privileges subservient to the cause of wildlife protection and management. However, it included their settlement

rights in forest areas before any such area is finally notified as a protected area in the form of a wildlife sanctuary or national park.

Forest Conservation Act reflects changing concerns in management and governance of forests from exploitation to conservation. By 1988, state governments were not allowed, unless there is a previous sanction by central government, to lease or otherwise any forest land to any private person. The focus was on conservation and people dependant on forests are overlooked to conservation objectives once again.[7]

First time recognition of rights of forest-dwelling communities on forests was considered by National Forest Policy of 1988. It has also been acknowledged by the Biological Diversity Act, 2002 that the importance of local people and their participation in their work towards conservation of biodiversity. This Act therefore includes local community in participating for management of biodiversity.

After the passing of the Scheduled Tribes and Other Traditional Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006, there was a sudden rise in the people claiming for registration for the titles on the forest lands and other areas of the forests.

This Act has tried to recognise the rights of India's forest dwellers by a way which is democratic and transparent and therefore, it can be said to be of great potential to restore the land and belongings of private individuals back to them for cultivation and livelihoods. It empowers the tribal and their village community to themselves hold assemblies and protect, conserve and manage the community forest, which statutorily recognised, for sustainable use in common interest. This Act requires that right over only up to the maximum area of 4 hectares of land occupation may be recognised. On grounds, States have mostly only provided for the recognition of right to obtain title over maximum of 4 hectare of land for occupation under the FRA. And there is very little awareness about other rights which are assured and can be claimed under this Act by claimants, among both government officials and villagers.

Community Forest Rights (CFRs)

This is a totally new right introduced by FRA which can be claimed herein which has in it restitution of customary usufruct rights over forests, rights to produce of water bodies; grazing rights (both for settled and nomadic communities); rights to community tenures over 'habitat' for Primitive Tribal Groups; ownership rights over Non-Timber Forest Products and rights over community forest resources.

This will allow the claimants to seek restitution of their usufruct community forest rights arbitrarily which were taken away when the declaration of various common lands of different kinds were made as state

forests.[11] This shall also give statutory power village to Gram Sabhas to work for protection, conservation and management of community forests for sustainable development and use.

Recognition of Right

Primarily, the Act make a look like it is recognizing right of all the schedule tribes and other tribals by the language of its preamble. But in actuality, Act has restrictive definitions and shall exclude a large number from its ambit and not all Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (STs and OTFD s) can claim rights irrespective of their suffrage and deprivation of pre-existing rights. Hence, since the implementation of Act it has been hard to assess the actual number of people who were deprived of their rights in the past and who are still not included in the Act, as there has been a vast diversity of claims made for unrecognized rights.

The Act also requires the claimants of rights to prove residence in the claimed forest land for over 3 generations of 25 years each, which can be seen to be stringent for OTFD (Other Traditional Forest Dwellers) and is surprisingly also applicable on STs who were back then compelled to move to different parts and areas as an outcome of displacement for development projects or in lieu of finances and employment. This provision was a result of high arguments by the Ministry of Tribal Affairs to include OTFDs in the Act only with a number of grounds/restrictions.[8]

The most important concern of theirs was that allowing such non-tribals to claim rights under this Act will be like opening the doors for greedy land grabbers to acquire forest land. Ministry was of thought that STs lived mostly in scheduled areas and were recognised constitutionally, also that the government records were prepared at the time of scheduling available. And hence they considered that it shall be easy to identify STs and avoid any abuse of law by unwanted greedy claimants.

However, in the case of OFTDs this requirement was unreasonable and legally questionable as proving three generations, of 25 years each, of residence since they were to prove residence in distant forest areas since 1930, which is long before our independence and also quiet long before the enactment of the Forest Conservation Act (FCA), 1980, since which the recognition of any right over forest land has been made difficult as it then required central government's permission for the land to be changed and brought in non-forest category.[9]

The forest tribes and the dwellers have faced discriminatory practices since times immemorial; earlier it was the British who used to exploit the forests for varied purposes. Though the condition changed after independence, but it was not enough to settle the thirst of the forest dwellers and till today they crave basic human rights amidst all the laws.

Intervention by rebel groups

The rebellious movements like Naxal movement against the government opposing the policies and schemes often overlap with the lives of these people residing in the forests. Due to these movements, habitat of forest dwellers is often trespassed and they are also targeted by the military and the police officials as naxal activists. This menace could be outdone by implementing the provisions of Forest Rights Act, 2006 and also by introducing forest dwellers to skill development activities.

Need based employment

The forest dwellers are often employed in the activities carried out in forests with a very marginal and minimal pay. Due to this, these people are exploited under revenue maximisation for governmental and private players.

Urbanisation

Urbanisation and its results which are development and progress create alienation and migration for the forest dwellers and the tribal people. As they are accustomed to the life which is totally dependent on the forest they are exploited in the urban areas where they migrate for job opportunities.

Political problems

Other problems for these people are the political interventions supporting the people who take control over the basic resources of the forest. These people are not checked by the police and other patrolling officials, result of which the tribals and dwellers living in the forest suffer. Under these circumstances, it is very essential that these people are recognised with legal protection at every level.

Efforts in all the states are often less than adequate for spreading awareness regarding the rights of the forest dwellers and the tribals. Due to the lack of awareness and corrupt practices at the root levels, the initiatives undertaken are confined only to the legislative platform and are never implemented.

- Therefore, a need for promoting information dissemination, specific education policies and communication drives stating the objective and purpose of every governmental schemes to be conducted by the regional monitoring authorities.
- Awareness campaigns should be organised, use of technology be induced in mundane lives of these people which could increase the level of overall awareness at large.
- Government at both the central and the state level should develop

mechanisms to boost participation of forest dwellers and the tribals at planning and execution stages.

- They should be supported financially through organisations such as *cooperatives, gramin banks and other governmental financial institutions should be given*.
- As, these people dwell in forests and are dependent on the forest yields the art and craft techniques developed by the forest dwellers should be popularised so that more job opportunities could be created and their independence could be substantially increased.

❑

References

1. P.K. Biswas, Forest, People and Livelihoods : The Need For Participatory Managemant, Available at : http://www.fao.org/docrep/article/wfc/xii/0586-c1.htm
2. Implementation of 'The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006' in Madhya Pradesh, School of Good Governance & Policy Analysis, Bhopal, M.P., (2012) Available at: http://aiggpa.mp.gov.in/files/pdf/publication/BestPractice-ImplementationoftheSCOTFDAMP.pdf
3. Implementation of "The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of forest Rights) Act, 2006" in Madhya Pradesh, School of Good Governance & Policy Analysis, Bhopal, M.P., (2012) Available at: http://aiggpa.mp.gov.in/files/pdf/publication Best Practice-ImplementationoftheSCOTFDAMP.pdf
4. The convention was ratified by India on September 29 in 1958 (Indigenous & Tribal Population Convention, 1957) Available at: http://www.un-documents.net/c169.htm
5. "*Evolution of Forest Laws in India"*
6. Archana Vaidya *, "A History of Forest Regulations",* Available at: http://infochangeindia.org/environment/backgrounder/a-history-of-forest-regulations.html accessed on 30 December 2015
7. Arnab Kumar Hazra, Julian L. Simon,*"History of Conflict over Forests in India: A Market Based Resolution"* Centre for Policy Research, (April 2002) Available at: http://www.libertyindia.org/policy_reports/forest_conflict_2002.pdf accessed on 24 December 2015
8. Madhu Sarin, Oliver Springate-Baginsk "India's Forest Rights Act -The anatomy of a necessary but not sufficient institutional reform" Available at: http://www.ippg.org.uk/papers/dp45.pdf
9. Forest Rights act, 2006
10. Science and Technology – developments and their applications and effects in everyday life, INSIGHTS, (April 16, 2015)